महानगर के कथाकार

सं. सोहन शर्मा

चित्रकूट
प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
दिल्ली : कलकत्ता

सम्पादक की ओर से

आधुनिक युग में महानगरों मे रहते हुए वहां की मशीनी जिन्दगी और तनावभरे जीवन के बीच अपनी रचनात्मक संवेदना को बनाए-बचाए रखना अपने आप मे एक महत्वपूर्ण बात है। इसीलिए चित्रकूट के भाई उमेश जी ने जब अपनी इस योजना का जिक्र किया कि वे महानगर के कहानीकारों की कहानियों के सकलन प्रकाशित करने का कार्यक्रम बना रहे है तो मुझे उनकी यह योजना कई दृष्टियों से बहुत सार्थक और उपयोगी जान पडी।

इस योजना के प्रथम प्रकाशन के रूप मे वम्बई महानगर के कहानीकारों की कहानियो का यह संकलन हम प्रस्तुत कर रहे है।

ऐसा नहीं है कि संकलन की सभी कहानिया केवल महानगरीय जीवन की कहानियां हों, इनमे से कुछ कहानियां महानगर के जीवन से सम्बद्ध है। कुछ गांव-कस्वे व छोटे शहरो की जिन्दगी की कहानियां भी है। बस एक ही बात इस संकलन के कथाकारो के बारे,मे कही जा सकती है कि ये सभी कथाकार सम्प्रति बम्बई महानगर मे बसे हुए हैं।

महानगर में शायद ही इनमे से किसी का जन्म हुआ हो पर आज ये महानगर में बसे हुए हैं। महानगर तक पहुंचने की इनकी अनुभव-यात्रा के विभिन्न पडाव रहे होंगे और कही न कही इन कहानियों में इस अनुभव यात्रा के सूत्र है। वे सूत्र जो भारतीय गांव-कस्बो के आदमी को महानगर के यंत्रणादायक यथार्थ तक ले आते हैं।

आज भारत मे महानगरीय जीवन के यंत्रणादायक यथार्थ की पृष्ठभूमि क्या है ? भारत के महानगरो का जीवन सामान्य व्यक्ति के लिए क्यों इतना त्रासद बन गया है ? यह त्रासदी पिछले करीब चालीस वर्षों से क्यों इतनी मारक बनती चली गयी है। इसकी पड़ताल के लिए इतिहास में बहुत पीछे जाने की आवश्यकता नहीं है। सन् 1947 की राजनीतिक स्वाधीनता के बाद जिनके जिम्मे देश को नेतृत्व देने का काम था उन्होने भारत की अर्थव्यवस्था को चलाने के लिए विदेशी पूजी को आधार बनाया। विदेशी साम्राज्यवादी

पूंजी ने भारत के साधन-स्त्रोतों को अपने चंगुल में ले लिया। विदेशी पूंजी के हितों के अनुकूल हमारी आर्थिक नीतियां बनीं, भारी उद्योगों और कल-कारखानों वाली केन्द्रीकृत और निगमबद्ध अर्थव्यवस्था में मध्यम-उत्पादनों, छोटे उद्योगों और ग्रामीण-व्यवसायों की उपेक्षा हुई।

नतीजा यह हुआ कि भारत के गांव उजड़ते चले गये। लोग शहरों में सिमटते गये। शहरों में यातायात, आवास और स्वास्थ्य सम्बंधी समस्यायें बढ़ती चली गयीं। महगाई और बेरोजगारी के अभिशाप की काली छाया शहरी जीवन पर गहराती गयी। शहर का जीवन यातना का पर्याय बन गया। दूसरी ओर साधन सम्पन्न छोटा सा तबका फलता-फूलता चला गया। बम्बई के मरीन ड्राइव, कलकत्ता के चौरंगी स्क्वायर और दिल्ली के कनाट प्लेस की चमक बढ़ गयी। आर्थिक असमानता ने मानवीय सम्बंधों और भावात्मक रिश्तों तक में कड़वाहट भर दी।

महानगरीय जीवन का यह अनुभव जगत इस संकलन की रचनाओं की संवेदना का धरातल भी है। हिन्दी कहानी के पाठक इनमें से दो-तीन नामों से कथाकार के रूप में परिचित होंगे। अधिकांश रचनाकार युवा पीढ़ी के ताजादम कथाकार हैं।

महानगर में रहते हुए अपनी रचनात्मक संवेदना को बनाये रखना और अभिव्यक्ति देना जहां इस संकलन के लेखकों के प्रसंग में महत्वपूर्ण बात है, वहीं हमारे लिए संतोष का एक मुद्दा यह भी है कि हम महानगर की युवा पीढ़ी के ताजादम कथाकारों से हिन्दी कहानी के पाठकों का परिचय करवा रहे हैं।

"महानगर के कथाकार" शृंखला का यह पहला प्रकाशन कैसा बन पड़ा है इसका निर्णय तो अंततः पाठकगण ही करेंगे।

सोहन शर्मा

ए/12 "दीप सागर"
अंधेरी (पूर्व)
बम्बई 400069

क्रम

टैंकर

☐ सूरज प्रकाश

लुधियाना मे जब करतारा ने टैंकर हाइवे पर लगाया तो रात के ग्यारह बज चुके थे। दिसम्बर की सर्द रात, सत्तर और अस्सी के बीच रेंगती स्पीडोमीटर की सुई और पूरी बोतल ठर्रा चढाये व्हील पर बैठा करतारा। उसकी सीट के पीछे वाली लम्बी बर्थ पर दो-दो कम्बलो मे खुद को सर्दी से बचाते हुए लेटे-लेटे मुझे तरह-तरह के ख्याल आ रहे थे। बीच-बीच मे सामने से आते किसी ट्रक की बत्तियो की चौंधियाहट आखो पर पडती तो थोडी देर के लिए एक अजीब-सा ख्याल जेहन मे उभरता—हम एक सर्द दोपहर मे छायादार वृक्षों मे घिरी किसी सडक पर चल रहे हो और बीच-बीच मे यह रौशनी न होकर धूप का टुकडा आ जाता हो। साइड से ट्रक के गुजरते ही यह अहसास मर जाता और मैं फिर उस अधेरी बर्थ पर अपने टूटते-जुड़ते ख्यालो के सिरो को तरतीब देने लगता।

कभी सोचा भी न था, मुझे इस तरह रात-बेरात, वक्त-बेवक्त शहर-दर-शहर भटकने वाली नौकरी करनी पडेगी। एक बेईमान व्यापारी की ईमानदार नौकरी। किसलिए—सिर्फ पाच-सौ रुपये के लिए ही तो! हा, पाच-सौ रुपये की यह नौकरी जो मुझे बी.एस.सी. करने के बाद पूरे तीन साल तक बेरोजगार रहने के बाद मिली थी और जिसके लिए मुझे किस हद तक जलालत-भरी स्थितियो से गुजरना पड़ा था। बी.एस सी. की पढाई करते समय कुछ सपने पालने शुरू कर दिये थे, लेकिन इस नौकरी ने उन सारे सपनों की धज्जिया उड़ा दी थी। अब मुझे कोई सपने नही आते, बस हरदम एक कशमकश चलती रहती है। किसी तरह इस सबसे छुटकारा पाना है।

इस समय लुधियाना से सत्तर हजार की नकद वसूली करके दिल्ली लौट रहा हू। करतारा गाडी दौडाता अपने मे मगन है। बीच-बीच मे स्टियरिंग पर ताल देता गाने लगता है—'नइयो लगदा दिल मेरा'! सर्दी से कंपकपी छूट रही है। ट्रक की सारी खिड़कियां बंद होने के बावजूद झिरियों से आती

हवा मानो चीर रही है। हम यहा आधी रात को ठड मे मर रहे है और हमारा सेठ इस समय साउथ दिल्ली में अपने आलीशान बगले मे बैठा एक के बाद एक पटियाला पैग खाली कर रहा होगा। सेठ का ख्याल आते ही मुझे उबकाई-सी आने लगी। उसे जोर से गाली देने का मन हुआ, पर उसे इस तरह सरेआम गाली नही दे सकता। फिर से बेरोजगार हो जाऊंगा।

दरअसल मैं जिस फर्म मे काम करता हू उसका नाम है—जय अंबे ऑयल कम्पनी। इसके मालिक है सेठ मुरली धर। पाच टैंकर है इस फर्म के पास जो यू पी, पजाब, हरियाणा के शहरो, कस्बो मे डीजल फर्नेस ऑयल, एच. एस डी, मिट्टी के तेल वगैरह की सप्लाई करते है।

ये सप्लाई आमतौर पर दो नबर पर होती है। रसीद वगैरह या तो होती नही, या जाली बनाई जाती है, 'देखने मे' सेठ जी बहुत ही भले और धार्मिक प्रवृत्ति के लगते है, तभी तो उन्होने अपनी फर्म का नाम भी ऐसा रखा है। बहुत प्यार से, धीरे-धीरे बात करते है। आवाज मे इतना अपनापन झलकता है और चेहरे से इतने भले लगते है कि शुरू-शुरू मे कई बार मेरे मन मे यह बेवकूफी भरा ख्याल आया है कि मैं रोज सुबह उसे नमस्ते सेठजी न कहकर उसके पैर छू लिया करूं। परन्तु यह उन दिनो की बात है जब मुझे उनके और उनके धधे के बारे मे कुछ भी मालूम न था।

हुआ यह था कि इस फर्म के लिए जो आदमी वसूली करके लाया करता था, वह चालीस हज़ार रुपये लेकर भाग गया। उसके घर-बार पर निगाह रखने और पुलिस को इत्तला दिये जाने के बावजूद उसका कुछ पता न चल पाया। चालीस हज़ार का चूना लग जाने के बाद सेठ सतर्क हो गये थे। इसलिए इस बार वे एक ऐसा आदमी चाहते थे जिसका पता-ठिकाना, घर-बार सब कुछ आखो के सामने हो।

और इसी चूना लगने की घटना के बाद मैं इस फर्म से जुड़ा, यह सब कुछ इतना आसान न था। उन दिनो मै दो-एक ट्यूशनें करके गुजारा कर रहा था। मेहता साहब को, जिनके बच्चो को मैं पढाता था, कही अच्छी-सी नौकरी का जुगाड बिठाने के लिए कह रखा था। उनकी सेठ से जान-पहचान थी। जब सेठ ने उन्हे अपनी फर्म के लिए एक ईमानदार लडके की तलाश के लिए कहा तो उन्होने मेरा नाम सुझाया। नाम सुझाना ही काफी नही था, सेठ ने व्यावहारिक बुद्धि और जीवन भर के अनुभव के आधार पर मुझसे उलटे-सीधे सवाल पूछे। एक बेहूदा सवाल यह पूछा कि कहीं मुझे मिर्गी वगैरह तो नही आती। कही ऐसा न हो कि मैं दस-बीस हज़ार रुपये की वसूली करके आ रहा होऊं और रास्ते मे मुझे मिर्गी आ जाये और कोई सारी रकम लेकर गायब हो जाये। ऐसे बेहूदा सवालो पर गुस्सा तो बहुत आया, सोचा भाड़ मे जाये ऐसी नौकरी, लेकिन नौकरी की बेहद जरूरत

और अपनी मध्यमवर्गीय दब्बू प्रवृत्ति के कारण सारे सवालों का सही जवाब देता रहा। सेठ ने पाच-सौ रुपये पर नौकरी पक्की कर दी, और अगले दिन से आने के लिए कह दिया। लेकिन सेठ बहुत काइया था, वह अपने पिछले अनुभव को दोहराना नही चाहता था। रात को अपनी गाडी मे मेहता साहब को लेकर पिताजी से मिलने के बहाने हमारे घर आया। घर मे रखे सामान वगैरह का जायजा लिया। पिताजी से बातो-बातो मे पूछ लिया कि मकान उनका अपना ही है, और कि घर मे मेरे अलावा कितने बेटे-बेटियो की शादी होनी बाकी है। हम सब कुछ समझ रहे थे, परन्तु अपनी जरूरत के आगे चुप थे। आत्मसम्मान पर लगती हर चोट को किसी तरह झेलते रहे। एक बात और भी थी, हम यही मान कर तसल्ली करते रहे कि ये सारी बाते एहतियाती तौर पर जरूरी है। लेकिन बाद मे जब मुझे भीतर की सारी बातो का पता चला तो इस बात पर गुस्सा आने के बजाये हसी आई कि मेरे सेठ को बेईमानी की कमाई वसूल करके लाने के लिए एक ईमानदार आदमी की जरूरत थी और उसने मुझे किस तरह से जलील सवाल पूछने के बाद ईमानदार पाया था।

यह तो ड्राइवरो और क्लीनरो के साथ टैंकरो पर आ-जाकर या कई बार माल की डिलीवरी देने के दौरान मुझे पता चला कि ग्राहकों के साथ कितने स्तरो पर और कितनी बारीकियो से धोखा किया जाता था। एक पूरा सिस्टम था बेईमानी का। अगर एक जगह चूक हो जाये तो दूसरी तरकीब हाजिर, लेकिन क्या मजाल जो पूरा माल ईमानदारी से सप्लाई हो जाये। सबसे पहली हेराफेरी टैंकर भरवाते समय ही शुरू हो जाती। पेट्रोल के 'टैंकर मे' डीजल की मिलावट, डीज़ल मे मिट्टी के तेल की और इस तरह हर माल मिलावटी भरवाया जाता। कम से कम १०० लीटर माल घटिया होता। उसके बाद जो गडबड़ की जाती थी उसके बारे मे मैं आज तक नही समझ सका हू कि वह सेठ और ड्राइवरो, क्लीनरो की मिली भगत थी या सिर्फ उनकी ईजाद की हुई तरकीब। किया यह गया था टैंकर के तल की पूरी लम्बाई-चौडाई मे एक नकली फर्श बनाया गया था। उसके नीचे १००-१५० लीटर माल आ जाता था। होता यह था कि कई बार पार्टी चेक कर लेती कि तेल टैंकर मे ढाई-ढाई हजार के चारो कम्पार्टमेंटो मे ऊपर निशान तक भरा हुआ है या नही, चेक कर लेने पर कि माल पूरा है, वह ड्राइवर को टैंकर मे लगे नलको से पाईपो के जरिये अडर ग्राउड टैंकर मे तेल डालने के लिए कह देती। नतीजा यह होता कि उन नलको से केवल ऊपरी फर्श के लेवल तक का तेल ही बाहर आता नलके के लेवल से नीचे के तहखाने का तेल टैंकर मे ही रह जाता। बाद में ड्राइवर वगैरह अपने ईजाद किये गये तरीके से तेल पीपो में भर लेते और लौटते हुए दूसरे शहर में पूरे या

ग्रौने-पौने दामो पर बेच देते । यह कमाई केवल उनकी होती या सेठ की भी, इसका मुझे कभी पता न चल सका । वैसे भी मैं जब टैंकर के साथ जाता तो ड्राइवर वगैरह मुझे सेठ का ग्रादमी समझ कर मुझसे ज्यादा न खुलते । सब काम मेरे सामने होता पर मुझे उसमे राजदार न बनाते । अलबत्ता इस कमाई मे से जब वे हाईवे पर किसी ढाबे पर अपने लिए बोतल खोलते तो मुझ सूफी के लिए भी चिकन वगैरह का ग्रार्डर जरूर देते ।

एक अन्य टैंकर की बनावट मे जो दूसरी तरह की हेराफेरी की गयी थी, वह थी कि टैंकर के चारो कम्पार्टमेंटो की भीतर की दीवारो मे नीचे की तरफ चवन्नी-भर का एक छेद था । इसमे होता यह था कि जब टैंकर का एक कम्पार्टमेंट खाली किया जाता तो उस छेद के जरिये दूसरे कम्पार्टमेंट मे से तेल ग्राना शुरू हो जाता । फिर तीसरे मे से दूसरे व पहले मे ग्रौर फिर चौथे मे से बाकी तीन कम्पार्टमेंटो मे तेल ग्राता रहता । जब तक घंटे-भर मे टैंकर खाली होता, चारों खानों मे से सौ-डेढ सौ लीटर तेल ग्राराम से फैल चुका होता ।

इस तरीके मे भी यही होता कि पार्टी द्वारा टैंकर मे मौजूद तेल की मात्रा का सत्यापन कर लिये जाने के बावजूद उसे बेवकूफ बना दिया जाता । ये तो वे तरीके थे जो मैं देख पाया था या जो मुझसे छुपे नही रहे थे, ग्रौर न जाने कितने तिलिस्म रहे होगे टैंकरो मे । इसके ग्रलावा, टैंकर मे माल की पैमाइश करने के लिए डिप रॉड मे भी हेराफेरी की गयी थी । इसमे निशान तो पाच फुट तक के बने हुए थे, लेकिन नाप मे कम से कम तीन इंच का फ़र्क था । उस तीन इच के फर्क से पूरे टैंक मे १०० लीटर का फर्क पड़ जाता था । मुझे पता चला था कि कुछ दूसरी कम्पनियो के टैंकरो मे भरा तो नकली या मिलावटी माल जाता था, लेकिन टैंकर की ऊचाई मे ढक्कन के नीचे एक पाइप फिट था, जिसमे ग्रसली माल होता था, दिखावे भर के लिए ।

सबका हिस्सा बधा हुग्रा था । पुलिस को बंधी-बंधाई रकम पहुचा दी जाती । डिप रॉड का कैलिब्रेशन करने वाले का हिस्सा हेराफेरी की मात्रा के साथ-साथ घटता-बढता रहा । चुंगी ग्रौर नाके वालो का फी ट्रक हिस्सा बंधा हुग्रा था । उनका हिस्सा उन्हे मिल जाये तो उसके बाद उन्हे कोई मतलब नही कि टैंकर मे तेल जा रहा है या शराब ।

इन सब पर तुर्रा यह कि ज्यादातर माल की सप्लाई दो नबर से होती थी । यानि 'नो रसीद बिजनेस' । ग्रौर इसीलिए बैंक खुला होने के बावजूद मुझे भुगतान नकद लाना पडता । बहुत कम मौको पर मुझे टैंकर के साथ भेजा जाता । कई बार तो ग्रॉफिस जाकर ही पता चलता कि कहां जाना है । कई मौको पर रात भी बाहर या यात्रा मे ही काटनी पड़ती ।

पहली बार जब वसूली के लिए दिल्ली से चला तो बहुत डर लग रहा

था। बुलंदशहर की किसी पार्टी से सात हज़ार रुपये लाने थे। मुझे राह खर्च के लिए सौ रुपये तथा पार्टी का पता दे दिया गया और कहा गया कि वहां अपना परिचय देकर पैसे ले लू, हम फोन कर रहे हैं। जब मैं बुलंदशहर पहुचा तो शाम के सात बज रहे थे। अगर वापसी के लिए आठ बजे की बस भी *मिलती तो दिल्ली मे सेठ के घर पहुचने तक रात का एक तो बज ही जाता।* मैंने पार्टी से कहा कि मैं रात किसी धर्मशाला वगैरह मे काट लेता हूं, पैसे सुबह उनके घर से ही लेकर चला जाऊंगा। सवेरे जब मैंने सात हज़ार रुपये लिये तो मेरा दिल धकधक कर रहा था। मैंने अपनी जिंदगी मे इतने सारे रुपये पहली बार अपने हाथो मे लिये थे। सात हजार तो दूर, कभी एक हजार रुपये भी आये हों, याद नही पडता। रुपये अच्छी तरह संभाल लेने के बावजूद रास्ते भर खटका लगा रहा, कही रास्ते मे डाका न पड जाये, कोई चोर-उचक्का पीछे न लग जाये, डर के मारे चाय पीने के लिए भी नीचे नही उतरा। दिल्ली आकर सेठ को पैसे देने के बाद जान मे जान आई। सेठ ने सारा हिसाब पूछा, मैंने ईमानदारी से बता दिया। उसने मुझे दो दिन के जेबखर्च के लिए बीस रुपये और दिये। तबीयत प्रसन्न हो गयी। अगर इसी तरह जेबखर्च भी मिलता रहे तो कोई दिक्कत नही है। कम से कम पूरी *तनख्वाह तो घर पर दे सकूगा।*

धीरे-धीरे मुझमे आत्मविश्वास आने लगा। पहले रकम दस हजार से कम ही होती थी। धीरे-धीरे मुझे बडी वसूलियो के लिए भेजा जाने लगा। पैसे सभाल कर लाने के नये-नये तरीके मैंने ढूंढ लिये। कभी जूते वाले डिब्बे मे तीस-चालीस हजार रुपये तक रख देता और फिर डिब्बा आराम से बगल मे दबा लेता, मानो नये जूते खरीद कर ला रहा होऊ, कभी रुपये टिफिन बाक्स मे रख कर लाता तो कभी डालडा के खाली डिब्बे मे। इस तरह पैसे रख कर खुद को पूरी तरह सन्तुलित और सामान्य बनाये रखने की कोशिश करता। मैंने देखा कि रुपये इस तरह लेकर चलने में कभी कोई तकलीफ नही हुई। इस दौरान मैंने एक बात और सीख ली थी—किस तरह से ज्यादा-से-ज्यादा पैसे बचाये जायें, मसलन बस से यात्रा करना और आटो-रिक्शा के पैसे हिसाब मे लिखना, होटल मे न ठहर कर धर्मशाला में ठहरना *या खाना घर से ले जाना और होटल मे खाने के पैसे लिख लेना। और जब* किसी रिश्तेदारी वाले शहर मे जाना हो तो खाना, रहना दोनों फ्री और पूरे पैसे बचा लेना। इस तरह दिल्ली से बाहर जाने वाले दिनो मे कई बार तीस-चालीस रुपये ऊपर से बना लेता। हां, इस बात का ख्याल जरूर रखता कि हिसाब बिल्कुल सच्चा लगे। कही ऐसा न हो, दो-चार रुपये के चक्कर मे पांच-सौ रुपये शुद्ध और तीनेक सौ रुपये ऊपर वाली नौकरी से हाथ धोना पड़े। सेठ भले ही बहुत काइया था, पर मुझ पर विश्वास करने लगा था,

एक बात और भी थी कि चूंकि मैं उसके काफी सारे राज़ जान गया था, अतः हिसाब में ज्यादा मीनमेख न निकालता।

इन्ही सब बातों को सोचते-सोचते न जाने कब मेरी आंख लग गयी। सुबह जब आंख खुली तो हम दिल्ली में प्रवेश कर चुके थे। यह ख्याल आते ही कि आज रविवार है, मन को तसल्ली हुई। कई दिन से कुछ काम टल रहे थे, दर्जी को कपडे देने थे, सोचा आज फुर्सत में सब काम निपटायेंगे।

करतारा ने टैंकर का रुख सेठ के घर की तरफ कर दिया। वहां सेठ को रकम सौंपनी थी। उसके बाद करतारा और क्लीनर टैंकर ले जाकर आफिस के पास खडा कर देंगे। फिर उनकी भी अगली यात्रा तक के लिए छुट्टी।

अभी नहा कर निकला ही था कि पता चला फर्म का मुंशी आया हुआ है। वह बहुत घबराया हुआ था। उसने बताया कि टैंकर ब्लास्ट हो गया है। सेठ कहीं बाहर चले गये है, सो मुझे इत्तला देने आ गया था। फटाफट तैयार होकर मैं उसके साथ लपका। अभी-अभी तो हम टैंकर छोड कर आये थे, ये अचानक क्या हो गया। रास्ते में मुंशी ने बताया कि टैंकर में से बचा-खुचा तेल निकालने वालों की वजह से ऐसा हुआ है। एक के तो बिल्कुल चीथडे उड गये है। 'ओ गॉड' मैं चौंका, 'कैसे', मुंशी बताने लगा—करतारा के टैंकर खडा करते ही आस-पास गैराजों में काम करने वाले दो छोकरे पीपा और पाइप लेकर आ गये। हमेशा की तरह करतारा ने उनसे दस रुपये लेकर टैंकर में से बचा-खुचा तेल निकालने की इजाजत दे दी और अपने घर चला गया। छोकरों को इस बार टैंकर से ज्यादा तेल नहीं मिला। अमूमन वे पांच-सात लीटर तेल मुंह में पाइप लगा कर टैंकर में से खींच लेते है। चूंकि इस टैंकर से पैट्रोल की डिलीवरी हुई थी इसलिए उन्होंने सोचा होगा कि शायद सर्दी की वजह से पैट्रोल नीचे जम गया है और निकल नहीं रहा है। पैट्रोल के लालच में उनमें से एक लडके ने बहुत बडी बेवकूफी की। उसने तेल में भीगा एक कपडा एक लकडी पर लपेटा और उसमें आग लगाकर टैंकर पर चढ गया। उसने सोचा कि शायद आग की गर्मी से पैट्रोल पिघल जायेगा लेकिन टैंकर का ढक्कन खोलते ही टैंकर में जमा हो गयी गैस की वजह से जोर का धमाका हुआ और टैंकर फट गया, टैंकर अब अंजर-पंजर रह गया है। सारी बात सुन कर मेरा दिमाग भन्ना गया—न जाने कौन थे वे छोकरे! कहीं मर-वर न गये हों।

जब हम वहां पहुंचे तो भीड लगी हुई थी। नौ-दस साल की उम्र के दो मासूम छोकरे वहां पड़े बुरी तरह तड़प रहे थे। शायद पुलिस के डर से उन्हें अब तक कोई अस्पताल नहीं ले गया था, हमारे पहुंचते ही करतार और क्लीनर भी आ गये। दोनों के चेहरे पर हवाइयां उड रही थीं। उन्हीं की वजह से यह सब हुआ था। छोकरे गये सो गये, सेठ को डेढ लाख के टैंकर के लिए

क्या जवाब देंगे।

हमने उन दोनो को किसी तरह एक टेम्पो पर चढ़ाया और अस्पताल ले गये। वहा डाक्टरो ने कहा—यह पुलिस केस है, पहले पुलिस को आ जाने दो, तभी भर्ती किया जायेगा। बहुत-बहुत मिन्नतें करने और लड़कों की हालत की दुहाई देने पर उन्हें भर्ती किया गया। पुलिस को खबर कर दी गई। जो लडका टैंकर पर चढा था, उसके बचने की उम्मीद कम ही थी। उन्हें अस्पताल मे मैं, मुशी, क्लीनर और दुकान का एक अन्य नौकर छोड़ने आये थे। पुलिस के आने से पहले ही मुशी ने कहा—"हम तो इस लफड़े में नहीं पड़ेंगे। अस्पताल पहुचा दिया, अब उनका बचना न बचना ऊपर वाले के हाथ मे है। उम्र भर के लिए पुलिस और अदालतो के चक्कर में कौन पड़े।" और उसने सहमति मांगने की गरज से क्लीनर और दूसरे नौकर की तरफ देखा। वह बेचारा पहले ही घबराया हुआ था, क्या कहता, तीनों मुझे छोड़ कर चले गये। मैंने उन छोकरो को इस तरह छोडना उचित नही समझा। टैंकर तो गया ही उसका तो बीमा भी हो रखा होगा, पैसे मिल जायेंगे; लेकिन इन बेचारो का क्या होगा। तभी मैंने सोचा फोन करके सेठ को पूछ लू शायद आ गये हो। पर वह तब तक नही आये थे।

एमर्जेन्सी वार्ड के बाहर बैठे मुझे तरह-तरह के ख्याल आ रहे थे। वे किसके बच्चे है; कहा के रहने वाले है? उन्हे कुछ हो गया तो किसे इत्तला करूंगा। मैं यह भी सोच रहा था कि मैं यहा क्यो बैठा हू, उनकी इस हालत के लिए मैं तो कहीं जिम्मेवार नही हू। क्यो मैं सुबह से बिना एक चाय पिये यहा बैठा हू? अभी मैं ये सब सोच ही रहा था कि तीन-चार लडके उधर आये। उनके चेहरे उतरे हुए थे। उनमे से एक ने मुझे बताया कि वो लडका जो ज्यादा जल गया है 'शिब्बू' इसका भाई है—'हां' साहब मैं उधर होटल मे काम करता हूं। शिब्बू एक गैराज मे था, 'साहब' वो बच जायेगा ना? वह पूछ रहा था, मैं उसे क्या जवाब देता, उस बारह-तेरह साल के लड़के पर एकाएक कितनी बडी जिम्मेवारी आ गयी थी। मैंने उन्हे वही बैठ जाने का इशारा कर दिया।

तभी पुलिस वाले आ गये। दोनो छोकरे अभी एमर्जेन्सी वार्ड मे बेहोश पड़े थे और बयान देने की स्थिति में नही थे। मेरा बयान लिया गया। मुझे जितना बताया गया था, मैंने बता दिया। वे सेठ और ड्राइवर आदि के पते लेकर, फिर आने के लिए कह कर चले गये।

मुझे बहुत जोर की चाय की तलब लगी, भूख भी लगने लगी थी, परन्तु वहा से उठने की हिम्मत नही बटोर पा रहा था। वहां बैठे हुए भी मुझे हर वक्त यही लगता रहा कि अभी डाक्टर या नर्स बाहर आकर कहेगी, वो लड़का क्या नाम है उसका, हां'''उसे बचाया नही जा सका, और वह सिर झुका कर

वापिस चली जायेगी। तब हम उठेंगे और'''

और हुआ भी यही। कोई तीन घटे तक हमारे वहा बठे रहने के बाद एक डाक्टर ने वार्ड से बाहर आकर बताया कि उस लड़के को नही बचाया जा सका। शिब्बू का भाई सिसकने लगा, उसके साथ आये लडके बुरी तरह सहम गये थे। मैं एकाएक खालीपन महसूस करने लगा था। मैंने शिब्बू के भाई के कधे पर हाथ रखा। मेरे हाथ का स्पर्श पाते ही वह फफक पडा। मैंने उसे रोने दिया। थोडी देर बाद जब उसका रोना कुछ थमा तो उससे पूछा—अब क्या करोगे, कहा घर है तुम्हारा—उसने बताया, 'यहा हमारा कोई नहीं है। दोनों होटल मे ही सोते थे। घर बहादुरगढ मे है! आप ही बताइये,—क्या करूं साहब!' मैं चितत हो गया। वह अबोध लड़का कैसे कर पायेगा यह सब। मैं खुद अपने आपको इतना उदास, थका-थका और खाली महसूस कर रहा था कि साथ जाना सभव नही था, मैंने उसे यही सलाह दी कि मैं एक टैक्सी कर देता हू, वह शिब्बू की लाश को लेकर गाव चला जाये। उसने हामी भर ली। लाश मिलने और पुलिस की कागजी खानापूरी करने में शाम के चार बज गये। मैने सारी कार्रवाई पूरी की। लाश मिलने पर बहुत मुश्किल से एक टैक्सी वाला लाश लेकर सौ रुपये मे जाने के लिए तैयार हुआ। बाकी लडके भी उसके साथ जा रहे थे। मैने सेठ के पैसो मे से सौ रुपये टैक्सी वाले को और दो सौ रुपये शिब्बू के भाई को दिये।

उन्हे विदा करके मैं सीधा सेठ के घर गया। वे अब तक नहीं आये थे। सुबह फिर आने को कहकर मै वापिस घर आ गया। बुरी तरह थक गया था, सुबह से कुछ खाया भी न था, हालाकि इन सारी घटनाओ के पीछे मैं कहीं भी दोषी न था, फिर भी न जाने क्यो एक अपराध-बोध सा मुझे कचोट रहा था। अगले दिन जब मैं आफिस पहुचा तो सेठ जी करतारा को बहुत ऊंची आवाज में गालियां दे रहे थे। आमतौर पर वे बहुत धीमे-धीमे बोलते है, पर इस समय वे अपनी पंजाबी पर उतर आये थे। मा-बहन की गालिया मै उनके मुह से पहली बार सुन रहा था। वे इस सारी दुर्घटना के लिए करतारा को दोषी ठहरा रहे थे। करतारा इस बात से बिल्कुल इनकार कर रहा था कि उसने उन छोकरों को टैंकर से तेल निकालने की इजाजत दी थी। बल्कि उसका कहना था कि उसने उन्हे कभी देखा भी न था। अब कोई भी आकर उसके पीछे से चोरी करे तो उसका क्या कुसूर।

शायद रात पुलिस भी सेठ के घर पर आई हो। मैं वहीं एक कोने में खडा रहा। इतने मे उनकी निगाह मुझ पर पडी, एकदम भड़के, "ये सब क्या लफडा है? किस चक्कर मे फंसा दिया तुम लोगो ने हमें? क्या हुआ उन छोकरो का? एक तो मर गया है न? और हां! पेमेंट लाये क्या? कहां है?" इतने सारे सवालों के जवाब मे मैंने यही कहा, "जी, मैं आपको

बताने आया था, पर आप थे नहीं, मैंने उसकी लाश उसके भाई को दिलवा थी और", सोचा पैसों की बात भी उन्हें बता दूं, आखिर उन्हीं के पैसे खर्च किये हैं, मैंने, वे तारीफ ही करेंगे कि चलो कुछ तो किया उनके लिए, "जी और पेमेंट ले आया था और उसमें से लाश गांव ले जाने के लिए टैक्सी वाले को सौ रुपये और क्रिया-कर्म के लिए भाई को दो सौ रुपये दे दिये थे।"

"क्या" सेठ जी चौंके, "किससे पूछ कर आपने उस हरामी के पिल्ले पर तीन सौ रुपये खर्च कर दिये, लाट साहब जी, एक तो यहां डेढ़ लाख का टैंकर उड़ गया, बीमा कम्पनी से पता नहीं हर्जाना भी मिलेगा या नहीं और आप हैं कि तीन सौ की थुक और लगा आये!" उनकी आवाज फिर ऊपर उठने लगी, "मैं पूछता हूं—वो मेरा दामाद लगता था क्या कि उसकी लाश को टैक्सी से ले जाने के लिए सौ रुपये खर्च कर दिये हैं।" सेठजी बडबडाने लगे, "एक तो वो हमारे टैंकर से तेल चोरी कर रहा था और हमारा डेढ़ लाख का टैंकर ले डूबा।" अचानक उन्होंने बात रोक कर मुंशी जी को आवाज दी—"ऐ मुंशी जी, ये तीन सौ रुपये लिख दो सतपाल जी के नाम। हमारी इतनी हैसियत नहीं है कि दया-धर्म दिखलाते फिरें।" मैं भौंचक रह गया। मुझे कतई उम्मीद नहीं थी कि बीस-पचीस लाख की मिल्कियत वाला यह सेठ इन तीन सौ रुपयों के लिए इस हद तक उतर आयेगा। दो पल पशोपेश में रहा—मार दूं ऐसी नौकरी पर लात, थू है ऐसी कमाई पर", पर अगले ही पल नौकरी छोड़ने से घटने वाली सारी घटनाएं तेजी से दिमाग में घूम गयीं। नहीं, छोड़ना सरासर मूर्खता होगी। तय कर लिया और चुपचाप बाहर आ गया। अब मुझे यही फैसला करना था कि अपनी ईमानदारी में और कितने प्रतिशत की कटौती करूं।

कुत्ता पकड़ने वाली गाड़ी

☐ ब्रह्मदत्त

पर्दे में रहने दो, पर्दा न उठाओ
पर्दा जो उठ गया तो भेद खुल जायेगा

अल्ला मेरी तौबा !—'लाइट आफ ईरान' का इलेक्ट्रिक ग्रामोफोन जोरों से बज रहा था। संगीत की स्वर-लहरी बाहर सड़क तक बही आ रही थी। होटल में काफी लोग बैठे ही थे परंतु बाहर फुटपाथ पर, लाला पानवाले की दुकान को घेरकर खड़े लोगबाग भी संगीत-प्रेमी तो है ही, पर मुफ्तखोर भी कम नहीं। होटल का ईरानी मालिक यह रहस्य जानता है। वह यह भी जानता है कि अगर वह रेकार्ड जोर से नहीं बजायेगा तो सड़क पर गुजर रहे लोगों को यह कैसे मालूम होगा कि यहां रेकार्ड बजाये जाते है ? मुफ्तखोरों का भय होते हुए भी ईरानी, अपने होटल की पब्लिसिटी के लिए, ग्रामोफोन जोर से बजाने का रिस्क उठाता है। वैसे भी, रिस्क उठाना ही ईरानी ने अपना व्यापार बना रखा है। प्रत्येक वस्तु का अधिक दाम लेना तो उसकी विशेषता है ही, पर सबसे बड़ी बात यह है कि खोल रखा है उसने होटल मगर वह होटल कम, म्यूजियम अधिक मालूम देता है। हालांकि म्यूजियम में रेकार्ड नहीं बजाये जाते पर ईरानी ने यह भी संभव कर दिखाया है। पाप-कार्न और कोकाकोला की आटोमैटिक मशीन से लेकर गन्ने का रस निकालने वाली बिजली की मशीन तक लगा रखी है। लोगबाग खाने-पीने में कम, मशीनों की कारगुजारी देखने में ज्यादा दिलचस्पी लेते है। ईरानी इस दिल-चस्पी का पूरा दाम वसूल करता है। वह फैमिली-रूम के प्रति लोगों के आकर्षण का दाम भी अच्छी तरह से वसूल करता है। उसने फैमिली-रूम्स माने पर बनवा रखे है और हर रूम को इतने पर्दों में ढक रखा है कि रूम में जिराफ भी आ जाये तो उसकी गर्दन न दिखे।...फैमिली-रूम में पन्द्रह पैसे वाली चाय एक रुपये में सर्व की जाती है। परन्तु बीयर-एड का कमर्शल स्वाद मारने के लिए वाली बीयर का जायका फैमिली रूम में बैठकर ले ले

में ग्राहक को मंहगापन ज्यादा अखरता नहीं ! सिर्फ चाय पर जिन्दा रहने वालों को तो खैर कहते हैं स्वयं में भी काफी दिक्कत उठानी पड़ती है।

पर्दे में रहने दो, पर्दा न उठाओ—

यही रेकार्ड दुबारा बजने लगा। क्वालिटी आइसक्रीम के साइनबोर्ड से पीछे टिकाकर खड़े किसी योगी के शिष्य की भांति आँखें मूंदे हुए बीटनिकों का भारतीय संस्करण जान पड़ते नवयुवक ने अचकचा कर आँखें खोल दीं। उसने कमर के ऊपर का पूरा शरीर घुमाकर होटल के भीतर झांका। पास ही खड़े टैक्सी साफ करने वाले छोकरे ने आँखें नचाकर, जोर से चिल्ला कर कहा, "है-है ! अन्दर बैठेली है !" आधुनिक भारत के गौरव ने मुस्करा कर अपनी बकरिया दाढ़ी पर हाथ फिराया और आँखें मूंदकर पुनः चिंतन के अगाध सागर में लीन हो गया।

"'अल्ला'''मेरी तौबा'''! रेकार्ड अभी बज रहा था किन्तु शान्ता होटल से बाहर आकर फुटपाथ पर चमचमाती धूप के नीचे जाकर खड़ी हो गयी। पन्द्रह-सोलह के लगभग उसकी उम्र थी। नाक-नक्श तीखे थे परन्तु चेहरे पर रूक्षता थी। आज उसने चूड़ीदार पायजामा और कमीज पहन रक्खी थी। सफेद रंग का चूड़ीदार पायजामा जगह-जगह से मैला हो गया था, भड़कीले रंगों में छपी कमीज भी तेल-चिकट धब्बों से गंदी दिखाई दे रही थी। कमीज का पीठ वाला भाग नितम्ब की दोनों फांकों के मध्य फंसा हुआ था, जिसे देखकर एक जुगुप्सा-सी उत्पन्न होती थी। शान्ता मगर दीन-दुनिया से बेखबर फुटपाथ की ओठ पर खड़ी, एक पैर से जमीन पर ताल देती रेकार्ड की ध्वनि पर ध्यान लगाये थी।

पान की दुकान पर खड़े एक बस-कंडक्टर ने घृणा से मुंह बिदकाते हुए अपने साथी बस-ड्राइवर से कहा, 'ये तो साला इंडिया हय करके सब चलता हय। होता रशिया तो गोली से उड़ा देता—ठो।' उसने दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा को जोड़कर रिवाल्वर की शक्ल बनाकर शान्ता की ओर इंगित किया।

बस-कंडक्टर की गोली से अप्रभावित शान्ता ने अपने रूखे बालों की लट को माथे पर से हटाते हुए लम्बी सड़क के दोनों छोरों को गर्दन घुमाकर देखा। काफी भीड़भाड़ थी। मोटरों का आवागमन भी खूब था। सड़कों पर होती सामान्य आवाजें इस सड़क पर भी गूंज रही थीं किन्तु न जाने क्यों शान्ता को लगा कि सब ओर एक खामोशी-सी छायी हुई है। भरी सड़क पर उसे अनायास ही टीन के खाली कनस्तरों की याद आने लगी। सहसा सड़क पर फैली तेज धूप में उसे लाल-लाल गाढ़ा रंग घुलता नजर आया। उसने घबड़ाकर फिर इधर-उधर देखा। सामने बोहरे की दुकान दृष्टि-रेखा में आते

ही वह फुटपाथ से उतर पडी। सड़क पार कर वह बोहरे की दुकान के सामने जा खडी हुई। इस ओर मकानों की छाया पड़ रही थी। शान्ता ने राहत की सास ली और मैले की पर्त को काटते हुए गर्दन के पसीने को उसने अपनी कमीज के अगले भाग को उठाकर पोछा।

बोहरे की फोटो-फ्रेम बनाने की दुकान थी। फ्रेम-लगी तस्वीरें भी बेचता था। पूरी दुकान तस्वीरो से सजी थी। तरह-तरह की तस्वीरें, देवी-देवताओं से लेकर सिने-तारिकाओं तक की। शान्ता को सभी तस्वीरें अच्छी लगती थी किन्तु आकृष्ट वह थी सिर्फ एक तस्वीर से। ऐसी एक तस्वीर मे जिसमे तीन तस्वीरें एक साथ थी। एक विशालकाय फ्रेम मे जड़ी तस्वीर बोहरे ने दुकान की बायी दीवार पर बाहर की ओर लटका रखी थी। सामने से देखने पर उसमे दिखाई देता—सच्ची सीता का पृथ्वी-प्रवेश। पृष्ठभूमि मे आकर्षणहीन, अलकार-विहीन नकली सीता खडी थी। बायी ओर से देखने पर सीता-हरण और दाहिनी तरफ से देखने पर सीता की अग्नि-परीक्षा का दृश्य दिखाई देता था। शान्ता उस चित्र की विचित्रता मे प्रायः घटो खोयी रहती। कई बार तो बोहरा तग आकर उसे दुकान से हट जाने को कहता, तभी वह हटती।

चित्र के सामने खडी होकर एक क्षण को उसने आखे बन्द कर लीं। फिर जरा-सा बायी ओर चलकर उसने देखा सीता-हरण। तेजी से दो कदम चलकर वह दायी ओर आयी। सीता-दहन।'''क्या आग है! कैसी धू-धू करके जल रही है! लाल-लाल अग्निशिखाएं सहस्रों राक्षसो की जिह्वाओं की भाति जैसे आकाश चाट जाने का प्रयत्न कर रही हो।'''न जाने क्यो शान्ता को बर्फ मे दबी मरी मछलियो की याद आने लगी। उसने अचकचा कर इधर-उधर देखा।

इनक्रोचमेंट-लारी आ रही थी। सडक पर दुकाने लगाने वालो मे भगदड़ मच गयी।

आर्डर वाले छोकरे को बुलाकर शान्ता ने उसे एक रुपये का नोट दिया। एक मिनट बाद ही होटल मे वही रेकार्ड गूज उठा।

पर्दे मे रहने दो, पर्दा न उठाओ।

रेकार्ड के साथ-साथ वह भी धीरे-धीरे गाने लगी। जिस टेबल पर वह थी उसके साथ चार कुर्सिया थीं किन्तु उसके सिवा वहा और कोई बैठा नही था। होटल की बाकी सभी कुर्सिया भरी हुई थी। सभी मेजो पर कुछ न कुछ खाने-पीने का सामान रक्खा हुआ था। शान्ता की ओर सबका ध्यान लगा हुआ था किन्तु शान्ता गाने मे ही मस्त थी। गाना खत्म होते ही उसे भूख का ध्यान आया। उसने वेटर को बुलाकर कीमा-पाव का आर्डर दिया।

ग्रामोफोन अब कोई अंग्रेजी गाना उगल रहा था। होटल में बैठे ईसाई छोकरो का एक दल अंगुलियो की चुटकियो और लातों के धमाको से रेकार्ड

पर ताल देने लगा। शान्ता की आँखें सिकुड़ गयी, माथे पर बिन्दी लगाने के स्थान पर तीन सीधी लकीरें उभर आयी। उसने तड़प कर आर्डर वाले छोकरे को बुलाया और कमीज की बगल वाली जेब से दो रुपये का नोट निकाल कर दिया। आर्डर वाले ने झुक कर उससे कुछ कहा। शान्ता ने भी जवाब में उसे कुछ कहा और प्याज का एक छल्ला उठाकर मुह में डाल लिया।

अंग्रेजी गाने के समाप्त होते ही फिर शान्ता का रेकार्ड गूंज उठा''' पर्दे में रहने दो'''। शान्ता का चेहरा दमक उठा। होटल में बैठे जवान छोकरो में हंसी की लहर दौड़ गयी। दो-तीन गढ़वाली युवक गालियां बुदबुदाते हुए उठ गये।

शान्ता ने एक पावरोटी का और आर्डर दिया। होटल मे खाली कुर्सियों की संख्या मे अधिकता देख ईरानी ने गल्ले से उठकर दो-तीन बिजली के बटन और नीचे कर दिये। बुझी ट्यूबलाइटें झिलमिला कर जल उठी। बन्द कमरे का दरवाजा खुलते ही जैसे निवस्त्र नारी चौंक उठती है उसी तरह पूरा होटल मानो हड़बड़ाकर उठ बैठा। पापकार्न की मशीन के पीछे बैठी मेरी ने साथ बैठे दुबले-पतले गुजराती युवक को अपनी पतली-सी जीभ निकाल कर दिखाई। फुटपाथ पर खड़ी, लांग वाली साड़ी बांधे चन्द्रा ने गन्ने का रस निकालने वाली मशीन पर हाथ धरकर खड़े युवक की बाह पर दांत से काट लिया।

शान्ता होटल से बाहर आकर, लाला की दुकान से थोड़ा हट कर खड़ी हो गयी।

'ईरानी ने साला चमड़ा बाजार खोल रक्खा हय!' सेकन्ड लास्ट ट्रिप पूरी करके आये बस-कन्डक्टर ने अपने साथी बस-ड्राइवर से कहा, 'ये तो भाई-भाई वाला देस है करके ईरानी-बिरयानी सब मजा करता है। होता रसिया तो एक-एक का बोचा ऊपर लात मारकर निकाल देता।

अभी गली का सिनेमा-हाउस छूटा नही था। रात के सिर्फ ग्यारह बज रहे थे किन्तु नीबू-शर्बत बेचने वाली गाड़ी को घेर कर दर्जनों ग्राहक इकट्ठे हो गये। शान्ता गाड़ी के कोने पर हाथ रखे खड़ी थी। उसने एक गिलास नीबू-शर्बत का आर्डर दिया था किन्तु गाड़ी वाला सहसा अत्यधिक व्यस्त हो गया था। वह टीप में भरा अनन्नास के एसेन्स का बना-बनाया शर्बत बेचने मे मशगूल था।

'ये भैया! जल्दी देता है कि नही?' उसने गाड़ी वाले से तीसरी बार कहा।

'अभी लो! एक मिनिट, बस।'

'बार-बार एक मिनिट बोलता है।' शान्ता जब गुस्से में देखती है, तब लगता है कि उसकी आंखें भेंगी है।

'तुम्हारे लिए तैयार करना पडेगा। जरा ठैरो। ये चलेगा तो देऊं ?' भैया ने भरे टोप की ओर इशारा किया।

शान्ता ने मुह बनाया।

दो लडके आपस में मजाक करते हुए एक-दूसरे को धक्का देने लगे। दोनो ही शान्ता के बहुत पास थे। शान्ता मगर अविचलित खडी थी। भीड़ के सभी लोग या तो उसे देख रहे थे या उस पर बातें कर रहे थे। गाड़ी वाले ने हाथ मे घुघरू बांध रक्खे थे। बर्फ तोडते, शर्बत मिलाते घुघरू झनझना रहे थे।

'टीन एजर है !' सबसे आखिर खड़े एक चश्माधारी ने अपने मित्र से कहा।

'यस, टू यंग बट डर्टी।' साथी ने अंगूठे के मचान पर से तर्जनी को फेंक-कर अपने कोट पर से काल्पनिक धूल को उडाया।

'है कौन ?' भीड के मध्य मे खड़े एक सफेदपोश ने पूछा।

'वाघरी है साली !' खाकी हाफ-पैंट मे नंगे बदन वाला एक काला-सा छोकरा बोला।

'इन लोगो मे तो बचपन से ही'''।' कोट वाले ने आगे की बात हाथ के इशारे से बतायी।

गाडी वाले के हाथ के घुघरू जोरों से झनझना उठे।

सफेदपोश ने फिर पूछा, 'पर है कौन ?'

'चालू है साली, और क्या।' गाडी वाले ने इतनी जोर से हाथ नचाया कि घुघरुओ का पट्टा खुलकर जमीन पर एक झन्नाटे से गिर पड़ा।

'तीन-चार दिन से ईरानी होटल मे बैठती है।'

'उसका पेटेन्ट गाना है, पर्दे मे रहने दो, पर्दा न उठाओ।'

'धन्धा करती है क्या ?' चश्माधारी ने पूछा और धक्का-मुक्की कर रहे दो लडकों मे से एक लडका शान्ता के ऊपर भहरा पड़ा। शान्ता के मुह से सिसकारी निकल गयी किन्तु दूसरे ही क्षण उसने गिरने वाले लड़के के गाल पर खींचकर एक तमाचा मारा।

'हलकट साला।' गाली देकर उसने फिर हाथ उठाया। लड़का सहम कर पीछे हटा।

'मारता कायकू हय ? हम जान-बूझकर थोडी गिरा ?'

'सरम नई आता। तेरा माभेन नई हय क्या ? शान्ता की आखें भीगी हो गयी। मारे गुस्से मे उसके स्वर नाक से निकलने लगे। वह उस लडके को मारने के लिए फिर आगे बढी। अबकी कई लोग बीच मे आ गये।

'औरत हो के मारता है ? लफड़े में आ जायेगा देखो।' एक ने कहा।

'जान-बूझकर नही गिरा तेरे ऊपर।' दूसरे ने कहा।

'हां, नहीं गिरा।' शान्ता चिड़चिड़ा उठी, 'मेरा बोवा पकड़ा वो नही देखा तुम लोग ?' जमीन पर जोरों से पैर पटक कर वह वहां से चल पड़ी।

भीड़ ने एक अमानवीय अट्टहास किया।

'रगड़ा दूं ?' गाड़ी वाले ने जोर से पूछा और मन-ही-मन बोला, मेरी जान।

'नई ! रगड़ा-पेटिस दे ! नई-नई, डबल नई। सिंगल चइए।' शान्ता ने कहा और मन-ही-मन बडबडाई, मसखरी करता हुए भडवा !

गाड़ी वाले ने अपने बैठने के स्टूल को एक पैर से उठाकर शान्ता की ओर बढ़ाया, 'बैठो, बैठो इस पर।'···मेरी जान, बोला मन-ही-मन।

शान्ता ने स्टूल फुटपाथ की ओठ पर रक्खा और बैठ गयी। पैर पर पैर चढ़ाकर और चढे हुए पैर को जोरो से हिलाते हुए वह सड़क की ओर देखने लगी। यातायात लगभग नहीं-सा था। सामने की सड़क टैक्सी-स्टैंड टैक्सियो से भर गया था। इर्द-गिर्द सभी दुकानें बन्द हो गयी थी। गाड़ी वालो का धन्धा जोरो पर था। इस सडक पर चार पहियो की गाड़ियों का जमघट था। लगभग सभी गाड़ी वालों ने पैट्रोमैक्स जला रक्खे थे। किसी-किसी गाड़ी पर दो-दो जल रहे थे। उसने घूरकर पेटिस वाली गाड़ी के पेट्रोमैक्स को देखा !··· कैसा घरघरा के जल रहा था। साली बत्ती है कि पतिंगो का कब्रिस्तान। उसने सोचा और उसे लगा कि वह जल रही है। पैर से पैर उतार कर वह झट से उठ खड़ी हुई !

'लो।'···मेरी जान ! गाड़ी वाले ने पेटिस का पत्ता उसकी ओर बढ़ाया।

पत्ता हाथ में लेकर वह पुनः स्टूल पर बैठ गई। उसने पत्ते का अग्रभाग तोड़कर उसी से पेटिस खाना शुरू किया।

'ये शान्ता ! चलती है घूमने ?' शान्ता के ठीक सामने टैक्सी खड़ी करके एक टैक्सी-ड्राइवर ने खिड़की से सिर निकाल कर पूछा।

'ऊंह।' शान्ता ने सिर हिलाया, 'अबी नईं।'

'अबी नईं तो फिर क्या बारह के बाद चलेगी ?' टैक्सी-ड्राइवर ने मुस्कुराकर कहा और गाडी स्टार्ट कर दी।

'आज जायेगा ही नईं, जाओ !' शान्ता ने पत्तल सड़क पर फेंक दिया।

'और क्या दूं···मेरी...?' जान ! गाड़ी वाले ने जबान दांत से काटते हुए पूछा।

'कुछ नईं !···अच्छा एक बटाटा-पूरी बना देव।'

शान्ता फिर स्टूल से उठ खड़ी हुई। जमीन की ओर देखती वह पैर के अंगूठे से जमीन पर अदृश्य रेखाएं खीचने-बिगाड़ने लगी।

मेरी जान···'लो !' गाडी वाले ने बटाटा-पूरी का पत्तल उसकी ओर बढाया। पत्ता देने के लिए वह फुटपाथ पर चढ आया था। शान्ता ने एक

हाथ आगे किया और गाड़ी वाले ने बहुत संभाल कर एक हाथ से शान्ता का हाथ पकड़ा और दूसरे से पत्ता उसके हाथ पर रखखा।

'देखो गिरे नहीं।' गाड़ी वाला अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ा।

शान्ता ने सिर उठाकर गाड़ी के पास आये लोगो की ओर देखा। वह गाड़ी से थोड़ा हटकर खडी हो गयी। एकाएक गाड़ी वाले की ग्राहक-संख्या मे वृद्धि हो चली।

खाते-खाते शान्ता को चौपाटी पर सुबह के वक्त बैठने वाले उस चने वाले की याद आने लगी जो फुटपाथ पर एक मुट्ठी चने बिखेर देता है और फिर उन चनों पर धीरे-धीरे एक-एक दो-दो करके फड़फड़ाते हुए कबूतर उतरने लगते है।'''कबूतरो का कितना बड़ा मेला लग जाता'''गुटरगू'''गुटरगू!''' फड़-फड'''!'''गुटरगू'''गुटरगूं!'''

कागज की थैली मे मुह से हवा भरकर गुब्बारा बना लो और फिर मारो जोर से एक घूंसा। फक्क!

फड-फड-फड़-फड-फड़-फड़र''';

सब उड़ जायेंगे साले बहन'''!

जीभ से पत्तल की दही-चटनी चाटकर उसने पत्तल को तोड़-मरोड़ कर सड़क पर फेंक दिया।

'मेरा मू क्या देखता है?' अपने ठीक सामने खड़े युवक की ओर आखें तरेर कर उसने पूछा।

'खाली-पीली गले पकड़ता है? हम कायकू तेरा मू देखेगा? तू बड़ा अनारकली है क्या?' युवक एकदम लाल-पीला होने लगा। शान्ता भी कम नही थी। गालियो की अनवरत वर्षा करने लगी। भीड़ ऐसे भी कम नही थी। जो कुछ कमी थी, इस झगड़े ने पूरी कर दी। भीड़ मे खड़े आवारा छोकरो ने 'बहलाला हो' की गगनभेदी आवाज के साथ बीच-बीच मे 'बजरंग बली की जय' का युद्ध-घोष भी शुरू कर दिया। थोड़ी ही देर में एक कान्सटेबल आ धमका। आते ही उसने भीड़ के ऊपर अपनी लाठी यो फिराई मानो वह एकाएक धुएं भरे कमरे में आ गया हो। धुएं के दूर होते ही उसे आग दिखाई पडी और वह आग्नेय-नेत्रों से शान्ता की ओर बढ़ा।

'ये क्या गोलपीठा बना रक्खा है?' उसने शान्ता के ऊपर लाठी उठायी।

'हमको क्या बोलता है? ये लोग को बोलो। हमारा पीछे क्यूं पड़ता है? हम रंडी थोड़ी ही है!'

'नई-नई तुम तो बड़ा सती-साध्वी है।' कान्सटेबल चिढ उठा, 'हमको सब मालूम है। साला रोज एक लफड़ा खड़ा करता है! चल इदर से! उसने फिर लाठी उठायी। शान्ता को लगा जैसे दूर कहीं कोई गाय रंभा रही हो। उसने सिर उठाकर देखा, सड़क पर एक काली कार आकर खड़ी हुई। वह

फुटपाथ से उतर कर तेजी से कार के पास आयी और दरवाजा खोलकर ड्राइवर के पास वाली सीट पर बैठ गयी। कान्सटेबल भी उस ओर बढ़ा पर कार का दरवाजा बन्द करती शान्ता चीखी, 'हम तो अपना मरद ढूढ रही है। ये लोग हमेरे को रंडी समझता है तो हम क्या करेगा!'

इसके पहले कि कान्सटेबल कुछ जवाब देता कार सन्नाटे से चल पडी।

'क्यो? क्या विचार है?' कार-मालिक ने गाड़ी की गति बढाते हुए पूछा, 'जबरदस्ती मर्द पकडती घूम रही है।

'जरा गाड़ी घुमाओ। हम कपड़ा बदल लेऊ ''।' शान्ता ने बिना उसकी बात का जवाब दिये कहा।

'कहां है तुम्हारा घर?' गाड़ी मोड़ते हुए कार-मालिक ने पूछा।

'वो है!' चौराहे पर खूबसूरत बगलानुमा बने सार्वजनिक शौचालय की ओर शान्ता ने उंगली उठायी।

होटल में अन्दर रेकार्ड बज रहा था। शान्ता का प्रिय रेकार्ड, अल्ला मेरी तौबा'''पर्दे मे रहने दो। शान्ता फुटपाथ पर पान की दुकान और होटल से कुछ हटकर खडी वही गाना गुनगुना रही थी। आज उसने शीशे-टकी लाल रंग की काठियावाड़ी चोली और लंहगा पहन रक्खा था। साथ मे लाल रंग की चुनरी भी थी जिसका एक पल्लू उसने सिर पर ले रक्खा था और दूसरा कमर मे खोस लिया।

गाना समाप्त होते ही टैक्सी साफ करने वाला छोकरा शान्ता के पीछे से गाता हुआ गुजरा, 'मारा तो गामडे इक्क बार आवजो!' शान्ता ने ध्यान नही दिया। सामने की सड़क पर बनी बस-चौकी से रूस-प्रेमी कन्डक्टर और उसका साथी बस-ड्राइवर चले आ रहे थे। शान्ता उन्हे देखकर न जाने क्यों कुछ सकपका गयी। वह थोडा और हटकर खड़ी हो गयी मानों उन्हे जाने के लिए रास्ता दे रही हो। मगर वे दोनों अपनी बातों मे मस्त दाहिनी ओर चाय वाले भट्ट की दुकान पर चले गये।

अब शान्ता जहा फुटपाथ पर खडी थी, वहा उसके सामने सडक पर एक घास भरी टूटी टोकरी पडी हुई थी। वह बिना सोचे-विचारे उसे देखने लगी! एकाएक एक कुत्ता आया और तीन पैर पर खडा हो उस टोकरी पर मूत कर चला गया। शान्ता को बहुत बुरा लगा। उसने सिर उठाकर इधर-उधर देखा। कोई देख नहीं रहा था। वह उसी स्थान पर खडी रही। दो-तीन मिनट बाद एक मैल-सना, काला-कलूटा, नंग-धडंग, छह-सात वर्ष का भिखारी बालक आया और वह भी उस स्थान पर जहां कुत्ता खड़ा हुआ था, खड़े हो कर टोकरी पर मूतने लगा। शान्ता ने निचला होंठ दांतों से पकड़ लिया। '''होती वह 'रसिया' तो दोनो को गोली से उड़ा देती'''हो!—उसने सोचा और मन ही मन हंस पडी। वहां से हटकर वह फिर पहले वाली जगह पर

आ खड़ी हुई।

बस-कन्डक्टर अपने साथी के साथ चाय पीकर पान की दुकान पर आया।

'एक पान मेरा और एक देसी-सादा-हरी-पत्ती चौघड़ा बांध देना।' चमड़े के बैग से पचास पैसे का सिक्का निकाल कर उसने पालथी लगाये बैठे पान वाले की जांघ पर रख दिया।

'क्यों पडित जी, यह छोकरी चालू है?' बस-ड्राइवर ने पान वाले से पूछा।

'चालू है कि बन्द है इसमें अपुन का क्या है? अपुन कोई उसका दलाल है क्या?' लाला एकदम उखड़ गया।

बस-ड्राइवर को लगा कि लाला ने उसे किसी जलाशय मे ढकेल दिया है। इसके पहले कि वह अपने बचाव में हाथ-पैर चलाता उसके साथी ने आगे बढकर उबार लिया।

'नईं-नईं पडित जी। इसका ऐसा मीनिंग नईं है!···हम बोला इसको कि धंधे वाली है पन इसको भरोसा नईं हुआ। ये बोल्ता है कि फुटपाली पर कौन धधा नईं कर सकता है—तुम बोलो पंडित जी, इंडिया मे क्या नईं हो सकता। है कि नईं?'

'पाचो उगली बराबर नईं होता।' लाला को पाच उंगलियो की ज्योग्राफी हमेशा अखरती थी। प्राय हर बात को खत्म करने के लिए वह पाच उंगलियो का सहारा लिया करता था।

'नईं हम बोला!' बस-कन्डक्टर को पूरे हाथ की परवाह नहीं थी फिर वह पाच उंगलियो के सिद्धान्त का क्या ख्याल करता! इंडिया में ये सब भांडवलसाही चलता है। रसिया ने रंडीबाजी एकदम खलास कर दियेला है।' उसने चिल्लाकर कहा।

'ओह बेरहम!—शान्ता ने सोचा।

'ऐसे तो अम्रीका ने भी बन्द कर दिया है।' बस-ड्राइवर का रेडियेटर कुछ गर्म जान पडा।

'व।' बस-कन्डक्टर ने रेडियेटर मे पानी डाला, 'उधर टेलीफून पर चलता है।'

एकदम बकवास!—शान्ता सोच रही थी।

रेडियेटर से गर्म-गर्म भाप उठी, 'चल, टाइम हो गया है।' ड्राइवर ने चिढकर कहा।

'चलो, इसी टाइम पूछ लेंगे।' कानों के निचले सिरों तक रखी कलमों वाले युवक ने कहा।

'अभी रहन दे।' स्कूटर से उतरते उसके साथी ने कहा।

'अभी क्या रहन दे।' पहला युवक झुंझलाते हुए बोला, 'चालू बहुत चढता जा रहा है आजकल और ये···ईरानी···इसकी तो···।' उसने एक वजनी

गाली देते हुए होटल की तरफ देखा और फुटपाथ से उतर कर सड़क पार जाने लगा !

'रंजन, ठैर ! मैं भी आता हू।' स्कूटर की ओर एक नजर डाल वह युवक भी रंजन के पीछे चल पड़ा।

'आजकल मे इधर एकाध दून हो जायेगा।' लाला ने अपने एक ग्राहक से कहा।

सड़क के उस पार वोहरे की दुकान के सामने शान्ता तीन कोणों वाला सीता-चरित्र का चित्र देख रही थी।

टैबिसया साफ करने वाले छोकरे ने ईरानी के काउन्टर पर पन्द्रह पैसे के सिक्के फेंके।

पर्दे में रहने दो, पर्दा न उठाओ।

पर्दा जो उठ गया तो'''इलेक्ट्रिक ग्रामोफ़ोन जोरो से गा उठा।

रंजन ने शान्ता के कन्धे पर हाथ रखा। शान्ता चौक उठी। उसने पीछे पलट कर देखा।

बायीं तरफ से, सीता-हरण।

'कल सुबह तक का टाइम देता हूं !' रंजन की आखें सिकुड गयी, 'सीधे-सीधे आ जायेगी तो ठीक है वरना बहुत बुरा होगा, याद रख।'

'हाथ निकाल।' शान्ता ने चीखकर कहा पर उसके चेहरे पर भय की अनगिनत रेखाएं उभर आयीं, 'हम कोई तेरी बंधेली नई है कि ओडर देता है।' रंजन का हाथ झटककर वह दो कदम पीछे हट गयी।

रंजन गुस्से में उसकी ओर बढा किन्तु स्कूटर वाले उसके साथी ने पीछे से उसका हाथ पकड़ कर रोका।

'हाथ छोड़ बाबू। अभी बताता हूं इसको।'

'छोड़ो यार।' बाबू ने उसे पीछे की ओर खींचा' 'अपने को कल तो देखना ही है इसे, न ?'

'कल की बात छोड़ो।' रंजन उबल उठा, 'तुम बोलो अभी मैं इसको उठा के ले जाता हूं।'

'वो तो ठीक है पर'''।'

'पर क्या ? इतनी तो हिम्मत रखता हूं, दोस्त !'

'अरे यार, किसको नहीं मालूम ! मगर अभी जाने दो। कल तक देखेंगे, नहीं तो'''।'

'अब देखना-वेखना कुछ नहो है ! कल उठाकर ही ले जाऊंगा। रंजन ने फैसला-सा सुनाते हुए कहा। सडक पर भीड जमा हो गयी थी। उन दोनों के पलटकर चलते ही भीड़ दो भागों में बंट गयी। बीच के रास्ते से दोनों चल पड़े।

बाबू अभी भी रंजन का हाथ पकड़े हुए था। फुटपाथ से उतरते ही रंजन

फिर पलटा और सिर उठाकर शान्ता की ओर देखकर जोर से चिल्लाकर बोला, 'कल जो तेरे हो वालू-सालू बुला लेना। सबके सामने पटककर नही''' तो मुझको रानू दादा का आदमी नही, कमाठीपुरा का'''' उसने हिजड़ों की तरह ताली बजाकर कहा, 'समझना !'

वे दोनो चले गये।

शान्ता ने भूमि की ओर देखा। सपाट।'''सख्त सीमेंट और कंकरीट।— दूर-दूर तक कहीं कोई दरार नही।'''

उसने एक नजर बोहरा की दुकान पर फेंकी और चल पडी।

आनन्दी बिल्डिग के दरवाजे पर आकर वह खडी हुई। सिनेमा वाली गली मे बालू सिर्फ नेकर और गंजी पहने, हाथ मे एक लंबा-सा डंडा लिये, दौड़ता आता दिखाई पड़ा। उसके पीछे दो और छोकरे हाथों मे डडे लिये दौड़ रहे थे।

'कुठे गेले ?—कुठे गेले ?' बीच सड़क पर डडा अधर मे सीधा तानकर बालू चिल्लाया।

'ती आहे'''।' एक छोकरे की नजर शान्ता पर पडी और तीनो दौडकर उसके पास पहुचे।

सडक के दोनों ओर फुटपाथो पर भीड़ एक रेखा मे जमा हो गयी।

शान्ता को लगा जैसे सब लोग शव उठाने की प्रतीक्षा कर रहे हो। उसने चौंककर आसमान की ओर देखा।

'ऊप्पर क्या देखती हय ? इधर देख !' बालू गुर्राया, 'रंजन आणि बाबू ओले होते काय'''कुठें गेले वेन ?'''?' उसने उचक कर दाये-बाये देखा।

'तुम लोग कायको मेरा पीछ़ पड गया है ?' शान्ता सिसक उठी। मागने के अदाज मे दोनो हथेलिया आगे बढ़ाकर वह वही जमीन पर बैठ गयी, 'हम सच्ची बोल्ती है।'''कसम से हम रडी नई है।'

दोनो हाथो मे चेहरा ढापकर वह रो पडी।

मास जलने की बू आ रही थी। शान्ता ने सिर घुमाकर देखा दारूवाला बिल्डिग की सीढ़ियो के पास सीक-कबाब बेचने वाला बैठा था। टीन की एक बड़ी परात मे पचासों लोहे की सीकें एक के ऊपर एक तरतीब से रक्खी हुई थी। हर सीक का एक-चौथाई भाग गीले-गीले ललछर मास से लिपटा हुआ था। कुछ मास-लिपटी सीकें, चौकोर लोहे की सीगड़ी मे दहकते अगारो पर भूनी जा रही थी। जमीन पर गक गदे लोहे के बडे-से तवे पर लिजलिजे मास का एक बहुत बड़ा लोयडा खुला पड़ा था। ढंकने के लिए एक अत्यंत मैला कपडा तवे के पास जमीन पर लावारिस-सा पड़ा था।

शान्ता के मुह से न चाहते हुए भी 'ओवक' की ध्वनि निकल गयी। वह कुछ और दूर हटकर खड़ी हो गयी। खाने को वह खाती है पर न जाने क्यो

उससे देखा नहीं जाता। उसने ब्लाउज में हाथ डालकर प्लास्टिक का एक छोटा-सा पर्स निकाला, बटन खोलकर देखा। दस और पांच के एक-एक नोट थे। बंद करके पर्स उसने फिर ब्लाउज की गर्दन के नीचे उतार दिया। मांस जलने की बू फिर आ रही थी। उसने गुस्से में कबाब वाले की तरफ देखा। कागज के पुट्ठे से वह सीगड़ी को हवा दे रहा था।

'गोरमिंट का माल, मेरे'''का बाल।' टैक्सी साफ करने वाला छोकरा फुटपाथ वहा देने का प्रयत्न कर रहा था। शान्ता ने बड़े ज़ोर से खखार कर थूका। उसका चेहरा एकदम विकृत हो गया। वह तेजी से लाइट आफ ईरान की ओर चल पड़ी।

'दस रुपिया बौत हो गिया। पच्चीस काय का'''साली'''कुमारी थोडीच हय।' हिन्द-विजय फरसाण मार्ट के पास, हाथ में कागज का पूड़ा लिये, भावनगरी गाठिया खाते हुए एक युवक ने काला कोट पहने हुए वकीलनुमा दूसरे युवक से कहा।

शान्ता के पैर जैसे वहीं जड़ हो गये। उसकी आंखों के आगे मास लिपटी सींकों की एक दीवार खड़ी हो गयी। उसने घबड़ाकर आसमान की ओर देखा। आसमान से सहस्रों, लाखों, करोड़ों सींकें लटक रही थीं। हर सींक पर लाल-लाल, लिजलिजा मास चिपटा हुआ था। सहसा शान्ता को लगा कि मास के उन टुकड़ों से खून रिस रहा है। कुछ ही क्षणों में उसकी आंखों के आगे लाल-लाल गाढ़ा रंग छा गया। सड़क पर कुत्ते चीखने लगे।

शान्ता ने जोरों से सिर झटका। वोहरे की दुकान के सामने कुत्ता पकड़ने वाली गाड़ी खड़ी थी। कैनवास का एक बड़ा-सा झोला लिये हुए खाकी कपड़े पहने एक आदमी गाड़ी से उतरा और एक कुत्ते के पिल्ले के पीछे दौड़ा। पिल्ला किसी अज्ञात भय से पिपियाता हुआ जोरों से भागा। सड़क पर यातायात कुछ थमता-सा लगा। पिल्ला मोटरों, गाड़ियों के बीच से टेढ़ा-मेढ़ा भागता हुआ शान्ता के पास से निकला किन्तु तभी शान्ता के पीछे से एक दूसरा खाकी-धारी हाथ में वैसा ही कैनवास का थैला लिये हुए सामने आ गया।

थैला हवा में एक बार लहराया और कुत्ते को लील गया।

'कूं-कूं-कू।' थैले के भीतर से आवाज आयी।

शान्ता कुड़मुड़ा उठी।

खाकी-वस्त्र-धारी ने थैले का मुंह पकड़ा। रस्सी कसी और कुकुआते ढेर को उठाकर ले चला।

'आई थिंक शी इज द वन ?' जीप में से उतरते सब-इंस्पेक्टर ने अपने पास बैठे व्यक्ति से पूछा।

शान्ता कुछ सहम कर पीछे हटी।

'हवलदार !' सब-इंस्पेक्टर ने जोर से कहा।

दो कान्सटेबलों ने शान्ता को पीछे से ढकेला।

शान्ता लड़खड़ाई। सड़क पर कुत्तों की चिल्ल-पों भयंकर हो उठी।

लाला की दुकान के पास तीन आदमी एक-दूसरे से हाथ मिला रहे थे।

इंडिया, अम्रीका, रसिया···साले सब एक गयेले हैं।···जीप में बैठते-बैठते शान्ता ने सोचा।

चौराहे पर कुत्ता पकड़ने वाली गाड़ी सिग्नल के इंतजार में खड़ी थी।

अभी सोने क। तो सवाल ही नहीं उठता। फिर ? बच्चीलाल ने शायद ऊपर से ही देख लिया था—वेल बजाने के पहले ही दरवाजा खुल गया।

"कोई नहीं है ? मा कहां है ?"

"वो तो बाबूजी के साथ बेलूर गयी। वहा से मामाजी के यहा जाने की बात थी—शायद परसो आयेंगी।" डाइनिंग टेबुल पोंछते-पोंछते बच्चीलाल बोल गया। "खाना लगा दू, दीदी लोग देर मे आयेगा—आपको खाना खिला देने को बोला था।'

कही कुछ कौंध गया। दीदी लोग—यानी पत्नी विमला, बडी साली कमला—जो पति के तीन महीने के लिए अमेरिका जाने पर पिता के पास कलकत्ता आ गयी थी, और'''और उनका देवर सुनील। सुनील एम०बी०ए० करने के बाद किसी अंग्रेजी फर्म में किसी एक्जीक्यूटिव पोस्ट पर आ गये थे। अभी शादी नहीं की थी, उसके कई रुमानी किस्से वह विमला से सुन चुका था। वैसे किसी पॉश एरिया मे एक फ्लैट मिला था पर समय उनका यहीं बीतता था।

"अरे बच्चीलाल, खाना तो हम खा आये है, हा एक गिलास पानी पिला दो।" कपड़े बदलकर वह चौड़ी बालकनी में पड़े दीवान पर पसर गया। दोपहर की बातें जेहन में घूम गई। नाश्ते के समय सब लोग बैठे बातें कर रहे थे। सुनील से औपचारिक परिचय बाबूजी ने करा दिया था उसी ने शुरू किया—

"अरुण बाबू, शाम को आप भी चलिए पिक्चर।" वह खुद भी ऐसा ही सोच रहा था। पर कुछ बोले, कि विमला की आवाज आयी, "लेकिन टिकट तो तीन ही है।"

"टिकट तो मिल जाना चाहिए।" कमजोर आवाज मे यह सुनील था।

"नयी पिक्चर है, रविवार की शाम को आपको टिकट मिलेगा ?" बात सही थी, लेकिन'''लेकिन क्षणभर वह विमला को देखता रह गया।

"लेकिन शाम को हमें किसी से मिलने जाना है—अलीपुर। पुराना क्लास फैलो है, अचानक ट्रेन मे मिल गया। आने को बोल आया हूं। विमला को भी बुलाया है।" सोचा कुछ देर तक नेशनल लाइब्रेरी की लान पर बैठेंगे।

"पर विमला जी को तो भई, हम ले जायेंगे। उनका टिकट भी है। बस आप इजाजत दीजिए, इजाजत!' अभी हसी आ रही है। क्या वास्तव में उसकी इजाजत ली जा रही थी।

"तो भई ५.३० बजे सब लोग तैयार, ओ० के० ? अरुण जी को अलीपुर छोडते हुए हम लोग निकल जायेंगे" सुनील ने विमला और कमला की ओर देखते हुए कहा।

"पर अपने को तो ५ बजे ही निकलना है।" वह अपने ढंग से कड़ा होने की कोशिश करने लगा।

"क्यों ? फिर हम भी ५ बजे ही निकल जायेंगे। विमला जी को वैसे भी फोर्ट नहीं घुमाया है अभी तक आध-एक घंटा उधर ही सही।"

कहते हुए सुनील ने दायें हाथ से पीठ पर धौल जमाते हुए विमला को घेर सा लिया। सब लोग धीमे से हसते रहे और मुस्कराती हुई विमला तौलिया लेकर बाथरूम में घुस गयी।

एक तस्वीर उस समय की भी उभरी, जब शादी के बाद विमला घर आयी थी। क्या उन लम्हों को वापस समेटा जा सकता है ? उस समय भी, कुछ अंकों से एम०ए० में फर्स्ट क्लास खो देने पर वह निराश तो हुआ—पर दुनिया इतनी कठिन निकलेगी—इसका भी कोई एहसास नहीं था। हसी के दिन, मधु की रातें—यह था चौबीस घंटे का हिसाब। और उस दिन वह कितनी नाराज हुई थी जब अपने कहीं जाने की मजबूरी से उसने उसे बड़ी बहन के बच्चों के साथ पिक्चर देख आने को कहा था। बहुत मनाने पर वह बोली थी, "सुन लो, फिल्म देखने जायेंगे तो तुम्हारे साथ या फिर नहीं जायेंगे। किसी दूसरे के साथ जाने को कहा फिर तुमसे बोलूंगी भी नहीं।"

"अच्छा बाबा नहीं कहेंगे।"

"प्रामिस ?"

और उसकी आगे बढ़ी हथेली को उसने जोर से दबा दिया था। बनावटी गुस्से में आंखें दिखाती हुई वह मां के कमरे की ओर चली गयी—जो न जाने कब से बुला रही थीं।

और तभी धमाका हुआ। बाबूजी के आफिस में गडबड तो पहले से चल रही थी। और एक दिन वह तीन महीने की तनख्वाह लेकर मुर्दे जैसे घर आ गये। सब कुछ ढीला पड़ने लगा। आई०ए०एस०, कालेज लेक्चररशिप में आते-आते बात क्लर्की तक आ गयी थी—पर हुआ कुछ नहीं। गाव जाना पड़ा। कुछ खेत थे। पर वहां भी लगातार दो सूखे और बाढ़ की वजह से घर की जमा-पूंजी लगभग खत्म होने को आ गयी। भैया-भाभी अपना चला लें, काफी था। पी०सी०एस० की तनख्वाह, तीन पढ़ने वाले बच्चे तथा अपर क्लास जीवन जीने की मजबूरी। वैसे इधर उनकी चिट्ठियां भी छोटी होती गयी थीं।

फिर तभी चिट्ठी आई कलकत्ता से। विमला की मां की तबीयत ठीक नहीं और इसी बीच उसके मंझले भाई की शादी भी तय थी। उसके पिताजी उसे लेने आयेंगे १०-१५ दिन बाद। किसी से कुछ पूछे विमला ने जोर-शोर से तैयारी शुरू कर दी थी। वैसे भी कोई रोकता—ऐसी बात नहीं थी। पर उसका जाने का उत्साह उसको कहीं उदास कर गया। जाने के पहले उसने

उदास नजरो से उसे देखा था—एकटक, फिर लिपट कर जोर से रो पडी थी।

"तुम भी चलो मेरे साथ। वहा कुछ न कुछ इन्तजाम हो जायेगा।"

"यह क्या इतना आसान है ? फिर, कुछ होगा तो मैं तुरन्त पहुंच सकता हूं तुमसे खबर पाकर—तुम्हारे साथ चलना ठीक नही होगा।"

जाने के बाद उसकी चिट्ठी आयी थी। उसका मन नहीं लग रहा, बाबूजी ने इधर-उधर बात चलायी है—उसके लिए। पत्र आते रहे, उनका आकार भले छोटा होता गया हो। इसी बीच उसके भाई की शादी भी हो गयी। दूल्हे-दुल्हन को वापस इग्लैंड जाना था—फिर भी वह शादी पर कलकत्ता नही जा सका। मन मे कहीं था कि विमला खूब नाराज होगी—शादी पर कलकत्ता नही आने पर भी। चिट्ठी आयी उसकी, "भैया की शादी हो गयी—वे लोग चले भी गये। बडी चहल-पहल रही। जीजाजी तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे।"

चिट्ठी उसको उदास कर गयी थी और उसने खुद ही कई तरह से अपने को तसल्ली देने की कोशिश की। और तभी पहले भेजे गये आवेदन-पत्र के उत्तर मे कलकत्ते की ही एक कम्पनी से इन्टरव्यू के लिये बुलावा आया। उसने अचानक पहुंच कर विमला को एक सुखद आश्चर्य देने का निश्चय किया। मीठी कल्पनाओं में डूबते-उतराते १५-१६ घटो की यात्रा कब समाप्त हुई—पता ही न चला।

लेकिन सब कल्पनाए ससुरजी के पहले ही सवाल से टकरा कर धराशायी हो गयीं।

"कालका मेल से आये ?"

न कोई आश्चर्य, न अतिरिक्त उत्साह। सीधा-सा सवाल, पर जवाब वह कठिनाई मे दे सका।

"जी···जी, नही···वो दिल्ली मेल से आये।" "लेट रही होंगी फिर।" कहकर वे खुद ही चुप हो गये। फिर आयी विमला की मा, और उन्होंने जब उसकी मा और बाबूजी के बारे मे दो-एक सवाल करके उससे नहाने को कहा, तो फिर उसी ने धीरे से यह बताने की कोशिश की कि वह यहा एक इन्टरव्यू के सिलसिले में आया है।

"देखो, भगवान की इच्छा," उदास स्वरो में बोलते हुए वे शायद रसोई-घर की ओर चली गयी थीं।

शाम को नीचे उतर कर वह खुद ही आगे की सीट पर बैठ गया। शायद मैनर का तकाजा था कि वह सुनील के साथ ही आगे की सीट पर बैठे। पर पता नही कहा से दौडकर सफेद यूनिफार्म पहने एक आदमी ने कार का पिछला दरवाजा खोला और कमला, विमला तथा सुनील इसी क्रम में पीछे बैठ गये। ड्राइवर फिर आगे आया। पर जब तक कार स्टार्ट न हुई उसे लगा-

—सुनील उससे पीछे की सीट पर ही आ जाने को कहेगा। लेकिन'''।

गाड़ी लगभग पार कर चुकी थी अलीपुर को, कि मुलायम स्वर में सुनील ने पूछा—"अलीपुर में किधर जाना था आपको ?"

"यहीं पर'''रोक दीजिए।" बिना जगह देखे वह बोल गया। 'बाई' की मुद्रा में यन्त्रवत हाथ ऊपर उठे और हार्न बजाती कार आगे निकल गयी। वहां से ब्रिगेड परेड ग्राउन्ड वह कब आ गया, मालूम न पड़ा।

नींद खुली तो काफी धूप निकल आयी थी। कोई चादर डाल गया था—सोते में, वरना इन दिनों दिन की गर्मी के बावजूद कलकत्ते में, भोर में ठंडक चढ़ जाती है। तभी कमला ने झांका, मुस्करायी और उसे जगा देख इधर ही लौट चली आयी। वह बैठ गया। "हमें उठने में देर हो गयी न। आप लोग कब लौटे ?"

"अरे मत पूछो। पिक्चर के बाद सुनील ने जिद की कि लेक की सैर की। मैं तो थकी-सी हाल में निकली—शाम से ही मन भारी था। लेक पहुंचते ही ठंडी हवा के एकाध झोंके मिले और कार में ही सो गयी। साढ़े ग्यारह, बारह तो बज ही गये होंगे—लौटते-लौटते।" फिर बोली, "विमला, सुनील के साथ क्लब गयी है—आती ही हो'''लो शायद आ भी गयी।"

बेल की आवाज में वे दरवाजा खोलने चली गयीं।

विमला ही थी—एक उसी नीली साड़ी में जिसे उसने खुद पसन्द किया था कई साड़ियों में से। विमला उसी की ओर मुड़ आयी, "तुम देर से उठे हो ? मैं तो सोयी ही थी कि सुनील ने हल्ला मचाकर जगा दिया—फिर क्लब घसीट ले गये। टेनिस खेलने जाते हैं न ? कहते हैं—तुम बैठी रहती हो तो शाट अच्छे लगते हैं। बहुत जौली आदमी है'''।"

वह अखबार में ही नजर गड़ाये रहा। अचानक वह चुप हो गयी। शायद अपनी बातों का बेतुकापन खुद ही समझ गयी। तभी अरुण को एक पहचाना-सा स्वर सुनायी पड़ा—

"रात बिना खाये गये।"

"नहीं तो, उसी लड़के के यहां खाकर आया था।"

"अलीपुर में तो तुम्हारा कोई दोस्त नहीं था ?'''नाराज हो'''?"

"तुम मेरे कितने दोस्तों के बारे में जानती हो'''खैर छोड़ो, अकेली आयी, सुनील नहीं आये।

उसने एक पल अरुण की ओर देखा, उसकी बातों का जवाब दिये बिना बोली, नीचे देखते हुए—"यह काल लैटर तुम्हें सुनील की वजह से गया है। वे आजकल बैकेट ऐंड बैकेट में ही हैं। पर्सोनेल मैनेजर होकर ज्वाइन किया

पिछले महीने। मुझे याद था कि तुमने वहां एप्लाई किया था—चर्चा की तो बोले देखेंगे'''।"

"क्या ?" वह समझ नहीं पा रहा था। "फिर एक दिन बोल गये कि तुम्हारी अर्जी उन्होंने निकलवाई है ढेर में से और दूसरे डिपार्टमेंटल हैड से बातें कर इन्टरव्यू के लिये बुलवाया है।"

सब बातें अपना अर्थ प्रकट करने लगी थीं। वह बोलती जा रही थी—"शायद यह काम हो जायेगा, शुरू में तनख्वाह ज्यादा तो नहीं—पर देखा जायेगा। फिर सुनील तो है ही।'''अरे ६ बज गये—तुम्हें तो १२ बजे जाना भी है इन्टरव्यू के लिये। जल्दी तैयार हो जाओ।"

वह सुन्न हो गया था, सोचने की शक्ति खत्म हो गयी थी। पता नहीं कब नहाया, नाश्ता किया। कपड़े बदलते समय विमला आयी "कल शाम तुम्हारे लिये यह तेज लाल रंग की टाई लेती आयी—नीले सूट पर इस रंग की टाई सुनील को बहुत पसन्द है'''।"

मैं कहता हूं "चुप रहो।" पता नहीं क्या हुआ वह चीख पड़ा था। विमला की आंखों में दो बूंदें आकर ठहर गयीं। अफसोस हुआ। उसका कन्धा थपथपा कर उसने टाई अपने हाथ में ले ली, विमला आंखें पोंछते हुए निकल गयी कमरे से।

सर्टीफिकेट्स की कापी लेकर नीचे उतरते समय ही वह फैसला कर चुका था। पर तभी मां का बीमार चेहरा, पिता की मजबूरी दर्शाती आंखें—उसके सामने नाच गयी और टैक्सी को बस आगे चलने के अलावा वह कुछ न कह सका। मां, बाबूजी की तस्वीरों को वह मन से हटाने की कोशिश करने लगा। पर कुछ न हुआ—तभी हवा के झोंके से टाई फड़फड़ा उठी और उसकी कनपटियां गर्म हो गयीं। उसने घड़ी देखी—इन्टरव्यू में अभी आधा घंटा था। तभी उसे याद आया, वाराणसी एक्सप्रेस भी तो आधे घंटे बाद ही हावड़ा से छूटती है। लेकिन'''लेकिन'''। सुनील और विमला की हंसी की आवाज ने मां और बाबूजी को सामने से हटा दिया। टैक्सी वाला भी जैसे चकित था—इस अजीब सवारी पर। टैक्सी चौरंगी आ गयी थी।

"बाबूजी, बताया नहीं कहां चलना है। आपके नौकर ने तो चौरंगी के लिये ही कहा था—पता नहीं कौन-सी बिल्डिंग बोल रहा था।"

"नहीं सरदार जी, वहां एक दूसरे साहब को जाना है। हम तो हावड़ा स्टेशन चल रहे हैं—२० मिनट हैं ट्रेन के छूटने में, जल्दी कीजिए।'

नदी

□ सलाम बिन रजाक

नदी बहुत बड़ी थी। किसी जमाने में उसका पाट काफी चौड़ा रहा होगा। मगर अब बेचारी सूख-साख, अपने-आप में सिमट कर रह गई थी। एक समय था जब उसके दोनों किनारों पर ताड़ और नारियल के गगनचुम्बी वृक्ष उगे हुए थे। जिनके घने साये नदी के गहरे, शांत और स्वच्छ जल मे यों खड़े दिखाई देते जैसे किसी प्रतापी राजा के दरबार में दरबारी गरदनें न्योढ़ाये खड़े हों। मगर अब पेड़ों की सारी ताजगी लुट चुकी थी और उनके लुड-मुड नीरस तने किसी अकालग्रस्त क्षेत्र के भूखे कंगाल लोगों की तरह वीभत्स और दीन-हीन लग रहे थे।

नदी बहुत बड़ी थी और उसका विशाल पाट अब भी अपनी बीती हुई गरिमा की ओर संकेत करता दिखाई देता था। मगर अब इस तरह सूख गई थी कि जगह-जगह छोटे-छोटे बेढंगे टापू उभर आए थे। दृष्टि-सीमा तक छोटे बड़े असंख्य टापू।

अब इन टापुओं पर कहीं-कहीं घास-पात और जंगली झाड़ियां भी उग आई थी, जिनमें लाखों टिड्डे और झींगुर रात-दिन फुदकते रहते। घास के नीचे कीचड़ मे लाखों कीड़े रेंगते, कुलबुलाते रहते और जब दोपहर की तपा देने वाली धूप में नदी का कम गंदला बदबूदार पानी तपने लगता तो नदी की मछलियां इस तरह इधर-उधर मुंह छुपाती फिरती जैसे किसी सभ्य घराने की बहू-बेटियां भरे बाजार में निर्वस्त्र कर दी गई हो। मछलियों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही थी और टिड्डे, झींगुर, कीड़े-मकोड़ों और मेंढकों की संख्या मे वृद्धि होती जा रही थी। दोपहर ढले नदी के गुनगुने, गदले पानी से छोटे-बड़े असंख्य मेंढक निकलते और उन टापुओं पर बैठकर टर्राते रहते। प्रत्येक टापू पर एक बड़े मेंढक का अधिकार था और हर बड़े मेंढक के छोटे-छोटे सैकड़ो श्रद्धालु एवं अनुयायी थे जो हर घड़ी उसकी टर्राहट के समर्थन में स्वयं भी टर्राते रहते।

"मैं इस नदी का वारिस हूं।" बडा मेढक।

"हां, आप इस नदी के वारिस है।" छोटे मेढक।

"इस नदी के एक-एक टापू पर मेरा अधिकार है।"

"इस नदी के एक-एक टापू पर आपका अधिकार है।"

"मैं···मैं चाहूं तो···।"

बडा मेढक उचित शब्दो के लिए आखें मटका-मटकाकर इधर-उधर देखता और पलभर रुकने के पश्चात कहता—

"मैं चाहूं तो एक छलांग में इस चमकते सूरज को आकाश से नोचकर पाताल मे फेंक दू।"

"आप चाहे तो····" छोटे मेढ़क धूप की चमक से अपनी आंखो को मिच-मिचाते हुये शब्दश: बडे मेढक का समर्थन करते कि बडे मेढक की चाटुकारिता उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था।

फिर पास ही के किसी टापू से एक मोटे पेट और पतली टांगों वाला कोई बडा मेढक गम्भीर आवाज मे अपने किसी अनुयायी से पूछता—

"कौन है यह ? कौन है यह मूरख ?"

एक तर्रार मेढ़क फुदक कर कहता—

"वही हमारा कमीना पडोसी है जिसके पूर्वज आपके पूर्वजो की जूतियां सीधी किया करते थे।"

"ओहो! उस नमक हराम से कहो सूरज पर हाथ डालने से पहले हमारे चरण छुए कि सूर्य हमारे पदचिन्ह के अतिरिक्त कुछ नही।"

उसके शब्दाडबर के उत्तर में किसी तीसरे टापू से आवाज आती—

यह कौन बदतमीज है। इससे कहो अपनी जवान को काबू मे रखे। हम बदजबानो की जबानें यों खीच लेते है जैसे यमराज शरीर से आत्मा।"

"खामोश! इस नदी का एक-एक टापू हमारी दृष्टि के घेरे मे है।"

इसके बाद हर टापू से एक नई आवाज गूंजने लगती, हर आवाज पहली आवाज से अधिक तेज, हर वचन पहले वचन से अधिक ऊचा। ऐसा शोर मचता कि बेचारी मछलिया सिहर-सिमट कर छोटे-छोटे जलकुंडो के तल मे जा छुपती। पेड़ो की डालो पर बैठे पक्षी फड़फडा कर चारों दिशाओ में उड जाते। टर्रा-टर्रा कर मेढ़को के गले रुध जाते, फूलफूल कर पेट फट जाते, और बीसो मेढक अपने ही बुलंद बाग नारो के बोझ तले दब-दबकर कुचल जाते। और फिर धीरे-धीरे सभी टापुओं पर एक भयावह मौन छा जाता। न किसी मेढक की टर्र-टर्र न किसी झीगुर की झाईं-झाईं। लेकिन यह मौन केवल थोडे समय के लिए होता। दूसरे दिन मेढ़क फिर अपने-अपने टापुओ पर एकत्र होते और फिर वही शोर, हंगामा और शब्दाडबर।

एक दिन इसी तरह् बड़े-छोटे मेढक अपने-अपने टापुओं से गला फाड़-फाड़ कर चीख रहे थे। एक-दूसरे का उपहास कर रहे थे। अपशब्दों के तीरों से एक-दूसरे कोछलनी कर रहे थे। मछलियां छोटे-छोटे जलकुंडों में तैरती उस विचित्र युद्ध को आतंक और विस्मय से देख रही थीं। कीड़े-मकोड़े घास और पौधों की जड़ों में दुबक गए थे। नदी के किनारे फुदकती चिड़ियां श्वास रोके इस बहस को सुन रही थीं।

तभी नदी के एक कोने में कुछ हलचल-सी हुई। पहले तो पानी के ऊपर बड़े-बड़े बुलबुले उत्पन्न हुए और फिर देखते-ही-देखते कोई सतह पर नमूदार हुआ। यह एक बेहद बूढ़ा मगरमच्छ था। इतना बूढ़ा था कि उसके दांत झड़ चुके थे। दुम के दाते कुंद पड़ गए थे। और पीठ पर बारीक-बारीक घास उग आयी थी। उसने अपनी पूरी शक्ति से दुम को उस कीच-भरी पानी की सतह पर दे मारा। एक ज़ोर का छपाका हुआ और पानी के छींटे उड़-उड़कर दूर-दूर तक पहुंचे। विभिन्न टापुओं पर शोर मचाते मेढक एकदम से चुप हो गए। सब अपनी-अपनी पिछली टांगों पर उचक-उचक कर उस आवाज की दिशा में देखने लगे। अत. सबों ने बूढ़े मगरमच्छ को देख लिया। सभी मेढक बूढ़े मगरमच्छ का बेहद आदर करते थे। बल्कि उससे भयभीत भी रहते थे। क्योंकि उनके पूर्वजों के अनुसार बूढ़ा मगरमच्छ उस नदी के बदलते इतिहास का प्रत्यक्ष-दर्शी गवाह् था।

उसकी उम्र का अनुमान लगाना कठिन था कि उस की उम्र समय की पीठ पर युगों का अंतर तय कर चुकी थी।

सभी मेढ़कों ने टर्रा-टर्रा कर बूढ़े मगरमच्छ की जयजयकार की। बूढ़े मगरमच्छ ने अपनी भारी दुम पटक कर और अपना लम्बा-चौड़ा जबड़ा खोल कर अभिवादन व्यक्त किया। फिर रेंगता हुआ एक ऊंची चट्टान पर चढ़ गया। चट्टान पर पहुंच कर उसने नदी के चारों ओर दृष्टि डाली। अब नदी, नदी कहां थी। वह तो बस कुछ टापुओं और छोटे-छोटे जलकुंडों का द्वीप-समूह होकर रह गई थी। जगह-जगह रेत के शुष्क ढेर उभर आए थे। कहीं-कहीं गड्ढों में पानी की बजाए मात्र कीच भरी हुई थी। नदी के दोनों किनारों पर जंगली घास अवश्य उगी हुई थी, मगर पानी की कमी के कारण घास का रंग भी पीला पड़ गया था। नारियल, सुपारी और ताड़ के वृक्ष बांस के जंगल की तरह कंकाल और उजाड़ लग रहे थे। नदी की इस बदली हुई हालत को देखकर मगरमच्छ का हृदय दु ख से भर गया। करीब था कि उसकी आंखों से आंसुओं के झरने बह निकलते। उसने बड़े धैर्य से उन आंसुओं को रोका। कदाचित नदी के ये वासी उन्हें मगरमच्छ के आंसू कहकर उनका उपहास न करें।

तदुपरांत उसने अपनी आंखें घुमाकर इधर-उधर टापुओं पर बैठे मेढ़कों को देखा। सारे मेढक दम साधे बैठे थे। मगरमच्छ ने फुकार कर गला साफ किया, फिर भर्राई आवाज में गोया हुआ।

"ऐ नदी के वासियो! कभी तुमने इस बुलंद चट्टान से नदी को देखा है?"

सभी मेढक एक-दूसरे की ओर देखने लगे। फिर सबने एक साथ इनकार में गर्दनें हिलाते हुए कहा, "नहीं—हमने उस बुलंद चट्टान से कभी नदी को नही देखा!"

"देखो, यहा से नदी को देखो! तो तुम पर तुम्हारे हकीर टापुओं की हकीकत खुल जाएगी।"

"मगर हम वहां से नदी को क्यों देखें, नदी तो हमारे रक्त में संचरती है।"

"नगी सच्चाइयों को झीने शब्दों का लिबास मत पहनाओ कि शब्द मनोभाव व्यक्त करने का बहुत मामूली माध्यम है। तुम्हारा यह स्वनिर्मित संतोष दरअसल आत्म-वंचना की ही एक शक्ल है।"

तभी एक कोने से ठिगने पीले रंग के मेढक ने टर्रा कर कहा—

"मैं देख सकता हूं, बुलंदी से मैं नदी का दृश्य देख सकता हूं।"

सब मेढक उस पीले मेढक की तरफ मुड़े। वह पन्द्रह-बीस मेढकों के कंधों पर चढ़ा छाती फुलाए अत्यंत तुच्छता से उनकी ओर देख रहा था। फिर उसने मगरमच्छ को संबोधित करते हुए कहा—

"ऐ! रहस्यज्ञानी। क्या मैं इन सभी मूढ़ जातियों से सर्वश्रेष्ठ नहीं हूं, कि यह नदी इस छोर से उस छोर तक मेरी दृष्टि के घेरे में है।"

अभी उसके शब्द हवा में गूंज ही रहे थे कि मेढकों का मीनार कांपा और एक-दूसरे के कंधों पर चढ़े हुए मेढक धप-धप नीचे लुढ़क गए। दो-चार कमजोर मेढ़कों की तो आंतें निकल आईं। कुछ वहीं ढेर हो गए। इर्द-गिर्द के टापुओं के मेढक उछल-उछल कर कहकहे लगाने लगे। हंसी, ठहाके, व्यंग्य और शोर से थोड़ी देर तक आवाज सुनाई नहीं दी।

अततः मगरमच्छ को टोकना पड़ा।

"शांति! शांति!! ऐ नदी के वासियो शांति। यह हर्ष का नहीं, शोक का विषय है कि तुम्हारी छोटी-छोटी नफरतों ने तुम्हारे कद घटा दिए हैं। और तुम सब अपनी ही लाशों पर ठहाके लगाने के लिए जीवित हो।"

"ऐ सर्वज्ञानी! क्या हमें अपने शत्रु की हार पर खुश होने का अधिकार नहीं। यह कमीना एक जमाने से दूसरों के कंधों पर चढ़कर हमें धमकाता रहता था।"

"शत्रु!" मगरमच्छ ने एक गहरा श्वास लिया।

"तुम नहीं जानते कि शत्रुता भी एक प्रकार की आत्ममापक है। आंखें

खोलकर देखो, मरने वाले की छवि में तुम्हें अवश दिखाई देगा। कान खोल कर सुनो उसकी आवाज में तुम्हें अपनी आवाज सुनाई देगी। दुश्मन की शिनाख्त मुश्किल है, इसलिए कि दोस्त की शिनाख्त मुश्किल है।"

"ऐ महानुभाव तू ही हमें कोई उपाय बता कि हमारे हृदय नफरतों के गुबार से धुल जाएं और हमारे वक्ष प्रेम के आलोक से भर जाए। तुझे हम बौद्धिक शक्ति का पुतला और परम अनुभवी समझते हैं।"

"अगर वातावरण अनुचित हो तो युक्ति उपहास का निशाना और अनुभव दोषारोपण का बहाना बन जाता है।"

"मगर तेरे सिवा कौन हमारा मार्गदर्शन कर सकता है कि हम सब एक-मत से तुझे अपना अभिभावक मानते है।" एक चितकबरा मेढक फुदक कर मगरमच्छ के करीब होता हुआ मक्खन चुपड़े स्वर मे बोला। और फिर इस अंदाज से चारों ओर नेत्र घुमाए मानो अपने सहचरों से कह रहे हो। "मेरा काटा कभी भूले से भी पानी न मांगे।" बूढ़ा मगरमच्छ उस चालाक मेढक का तात्पर्य समझ गया। एक उचटती दृष्टि उस पर डाली और फिर दूसरे मेढकों को संबोधित करता हुआ बोला—

"अभिभावक एक ऐसे दुःशील और चालाक व्यक्ति को कहते हैं जो कमजोरों की सहायता इसलिए करता है कि वह जीवन-भर उसके उपकारों के बोझ तले दबे रहे।"

मगरमच्छ के इस करारे उत्तर ने विभिन्न टापुओं मे एक कोलाहल डाल दिया। सारे मेढक देर तक टर्राते और ठहाके लगाते रहे। और वह चित-कबरा मेढक विक्षुब्ध हो बल खाने लगा। जब शोर जब कम हुआ तो चितकबरा मेढक हवा मे कलाबाजी खाता हुआ चीखा—"ऐ निष्ठुर उपदेशक, तेरे इन कटुवचनों ने मेरे अहंकार को चूर-चूर कर दिया। मैं तलवार का घाव सहन कर सकता हूं पर अपने 'स्व' पर प्रहार नहीं सह सकता।"

"अहंकार!"

मगरमच्छ ने उस छोटे-से मेढक की ओर हिकारत से देखते हुए कहा—

"चिउटी जब अपने मुह मे शक्कर का दाना लिए चलती है तो समझती है सात पर्वतों का बोझ उस पर लदा है। तुम अपने डेढ इंच के अहंकार को आखिर इतना महत्व क्यों देते हो, जो पानी के रेले से बह जाता है और हवा के मामूली झोंके से उड जाता है। जब तक तुम्हारा अहकार तुम्हारे व्यक्तित्व का अंग नही बन जाता वह छिपकली की कटी दुम की भांति तुच्छ और हकीर है। तुम्हारी समस्या यह है कि तुम सब छोटे टापुओं में बंट गए हो और प्रत्येक अपने टापू को संपूर्ण भूमंडल के बराबर समझता है।"

मगरमच्छ का यह वार बहुत स्पष्ट और तीखा था। तीव्र वेदना से उनके रक्त में गाठें-सी पड़ गईं। उन्होनें एक-दूसरे की ओर देखा। क्रोध, अपमान, और ग्लानि ने उनकी हालत विचित्र कर दी थी। उन्हे लग रहा था, कोई उन्हे रस्सी की तरह बटता जा रहा है। मगर वह क्या कर सकते थे कि उनके पास न साप का-सा फन था न बिच्छू का-सा डंक। अलबत्ता वे चीख सकते थे कि अब उनकी चीख ही उनके अस्तित्व की शहादत थी। अतः एक क्षण के मौन के उपरान्त वे एक स्वर मे टर्राने लगे। मगरमच्छ पूरे धैर्य से उनकी टर्राहट सुनता रहा। और चुपचाप उनके गले की फूलती-पिचकती झिल्लियो को देखता रहा। जब टर्राते-टर्राते उनकी गर्दनों की झिल्लियां लटक गईं, पेट चिपक गए तब मगरमच्छ ने धीरे से गरदन उठाई। यहां से वहां तक बिखरे मेंढ़कों पर एक खेदपूर्ण दृष्टि डाली, छोटे-बड़े, नीले-पीले, काले-सफेद, दुबले-पतले, मोटे-तगडे सारे मेंढक मुह खोले, गरदनें डाले गहरी सासें ले रहे थे। अब उनकी आखिरी चीख भी उनके गले में घुट कर मर चुकी थी। अत एक लम्बी खामोशी के बाद मगरमच्छ ने अपना जबड़ा खोला—

"ऐ नदी के वासियो! तुम मे से हर कोई अपने स्वार्थ के धुरे पर इस प्रकार घूम रहा है कि तुम्हारी नजरो में सारे रंग गडमड हो गए हैं अब रगो की पहचान मुमकिन नही। अत. अब मेरे पास तुम सबके लिए एक हिंसक प्रार्थना के अतिरिक्त कुछ नही है। मै प्रार्थना करता हू, तुम सब प्रार्थना की समाप्ति पर उच्च स्वर मे 'आमेन' कहना. यही तुम्हारी मुक्ति का अंतिम उपाय है।"

मेंढको ने मगरमच्छ की बात का कोई उत्तर न दिया। बस अपने किरचों-किरची अस्तित्व के साथ टुकुर-टुकुर उसे घूरते रहे।

अब उजाले के पंख सिमटने लगे थे। सूरज एक कीकर की डाल में फंसा फड़फडा रहा था। उसके रक्त की लाली बूंद-बूंद नदी के गड्ढो मे सोना घोल रही थी। हवा में एव विचित्र-सी मन को कचोट देने वाली उदासी भर गई थी। तभी मगरमच्छ ने आकाश की ओर मुह उठाया, आखें बंद कर लीं। और दुआ मागने लगा—

"ऐ! आकाश और पाताल के मालिक! ऐ भूखंड को सागर और सागर को भूखंड में बदलने वाले सर्वशक्तिमान! जमाना बीत गया, यह नदी सूखती जा रही है और हम हैं कि जिन्हें एक ही नदी के वासी कहलाना था, अलग-अलग टापुओं में बंट गए हैं। ऐ एक जलबिंदु से नदिया बहाने वाले और नदियो को समुद्र से मिलाने वाले हमारे रब्ब! हमारी इस सूखी नदी में किसी प्रकार बाढ़ का सामान पैदा कर ताकि हम जो इन छोटे-छोटे टापुओं में विभाजित

हो गए हैं, दुबारा इस नदी मे घुल-मिल जाएं और इसके विशाल अंचल में डूब कर इसी का एक अंग बन जाए। बाढ़! सिर्फ एक तीव्र और तेज बाढ़।"

मगरमच्छ प्रार्थना समाप्त करके थोड़ी देर तक आखे मूंदे मेढकों के 'आमेन' कहने की प्रतीक्षा करता रहा। मगर जब काफी समय गुजर जाने के बाद भी कहीं से 'आमेन' का शब्द सुनाई नहीं दिया, तब उसने आखें खोल दी। इर्द-गिर्द के टापू खाली पडे थे, सभी मेढक नदी के कम-कम गदले और बदबूदार पानी में डुबकियां लगा चुके थे।

उसका फैसला

□ शैलेन्द्र प्रसाद बहुगुणा

"हम जात है री मुनिया।"

रिक्शा खींचते हुए माधो अपनी पत्नी से कह रहा था जो कुएं से पानी खींच रही थी।

"अच्छा'''और हां, सुना तुमने, आज मुनिया के लिए दवा लेत आना, कल पूरी रात खों-खों करत रही है।"

गीले हाथों को आंचल से पोंछती हुई कह रही थी मुनिया।

बुखार के कारण तीन दिन से मुनिया खटिया पर पड़ी हुई थी, चेहरा तीन दिन में ही पीला पड़ चुका था और ऊपर से पेट में अन्न का दाना भी नहीं गया था। शायद गरीबी का एहसास उस अबोध बच्ची को था। माधो की नजरें सामने खाट पर लेटी मुनिया के अस्थि-पंजर पर पड़ीं और लंबी सांसें लेते हुए उसने अपना रिक्शा आगे बढ़ा दिया। खाकर कुछ न आया था। खाता भी तो क्या ? घर में आटा भी नहीं था जो सुनिया एक रोटी ही डाल देती। उसने खुद अपना पेट काटकर एक रोटी माधो के लिए बनाई थी रात में, कि सुबह माधो को दे देगी, पर मुई बिल्ली जाने कब वह रोटी भी चट कर गई। मारे भूख के माधो की हालत खराब हो रही थी। उसने जेब से एक बीड़ी निकाली और सुलगा कर काले पड गए होंठो के बीच दबा दी। यह शायद उसने भूख भुलाने के लिए किया था या फिर आदत से।

कोई दिन कितना मनहूस होता है। दिन का एक बज गया था पर उसे कोई भी सवारी न मिली। बस सुबह एक बच्चे को स्कूल छोड गया था, आठ आने में। इतने-से पैसों से भला क्या किया जाए। इससे न तो मुनिया के लिए दवा ही आ सकती थी और न ही उसकी क्षुधा शांत हो सकती थी। वह अनिर्णय की स्थिति मे था।

असहाय होने पर मनुष्य निराश हो जाता है। यही हालत माधो की थी। वह लाचार होकर पेड़ के नीचे खड़ा न जाने क्या-क्या सोच रहा था कि

खनखन.हट की आवाज ने उसकी तन्द्रा को भंग कर दिया। सामने के पीले मकान की एक औरत गुस्से मे बर्तन पटक रही थी। माधो की थकी और निराश आखों में पानी आ गया। कही पर तो एक-एक दाने की इज्जत होती है और कहीं पर इन पैसेवालो के लिए किसी भी चीज की कोई इज्जत नही है। अरे भई, नसीब वाले है। इन्हे क्या पता कि इनकी जूठन से कई भुखमरों की पेट की ज्वाला शान्त हो सकती है। पर इन्हे क्या ? कोई मरे तो मरे, न जाने वह क्या-क्या सोचने लगा। फिर बेबसी से हंसने लगा। मुनिया का ध्यान आते ही वह फिर गंभीर हो गया था।

",क्यों भाई रिक्शा खाली है क्या ?"

"हा हुजूर खाली ही तो है।" थकी हुई आवाज में माधो ने कहा।

"सिविल लाइन चलोगे ?"

",हा हुजूर, जरूर चलेंगे।"

"कै पैसा लोगे ?"

"हुजूर जो मुनासिब समझें; दे दें।"

"एक रुपया मिलेगा, चलना हो तो चलो।"

"हुजूर, एक रुपया तो बहुत कम है, इतने मे कैसे पटेगी।"

"ठीक है, फिर ऐसे ही पटाओ, हमारा रोज का आना-जाना है।"

"रोज ही एक रुपया देते है।" ऐसा कहकर वह व्यक्ति गुस्से में बढ़ गया। माधो के सामने मुनिया का मुरझाया चेहरा घूम गया।

"बापू हमका भूख लगती है।" उसे लगा मुनिया रो-रोकर खाना रही है, चलू सवारी तो ले लू। दवा तो नही पर मुनिया के लिए कुछ तो ले ही लूगा। यह सोचकर वह रिक्शा घसीटते हुए उस व्यक्ति के पास ले गया।

"आइये हुजूर।"

"क्यो, आ गए न रास्ते पर, गाली खाने की तो आदत है तुम लोगों की।" इतना कहकर वह रिक्शे पर बैठ गया। जून की उस दुपहरी में पसीना पोछते हुए माधो रिक्शा खीचने लगा। आधा रास्ता तय किया था कि रिक्शे का टायर फट गया। शायद अधिक हवा के कारण ऐसा हुआ था। एक तो मुनिया की बीमारी ऊपर से रोजी का एकमात्र साधन भी जब इस वक्त साथ देने से कतराने लगा तो माधो को रोना आ गया भगवान के न्याय पर।

"अरे यह क्या ? मुंह तो बहुत खोलते थे, पर अपना रिक्शा नही देखते।" यह कहकर वह व्यक्ति रिक्शे से उतर कर दूसरा रिक्शा ढूंढ़ने लगा। माधो भूख से भी बेहाल हो रहा था, डरते हुए उसने उस व्यक्ति से कहा, "सा'''ब, कम-से-कम आठ आना पैसे ही दे दीजिए। आखिर आधे रास्ते तक तो लाया ही हूं।"

"अरे बदमाश कहीं का, शर्म नहीं आती तुझे पैसा मांगते हुए। एक तो समय खराब किया, ऊपर से पैसे भी मांगता है। इन्हें भी दो और दूसरा रिक्शा करो तो उसे भी दो।" आदमी बड़बड़ाने लगा।

माधो भूखा तो था ही, साथ ही मुनिया का बुझा हुआ चेहरा भुलाए न भूलता था। क्रोध से उसकी नसें फटी जा रही थी। सुनिया की आवाज कानों में अलग गूंजती थी, "मुनिया के लिए दवा लेते आना।" बस वह भूल गया कि वो एक मामूली-सा रिक्शाचालक है। आखिर लड़ ही पड़ा वह उस व्यक्ति से, बात-ही-बात में वहा भीड जमा हो गई। भीड़ तो आखिर भीड़ ही है, उसका निर्णय अधिकांशत. गलत होता है। भीड उस व्यक्ति के साथ हो गई और कुछ नौजवानों ने माधो को पीटना शुरू कर दिया।

"स्साले जबान चलाता है। अपनी औकात नहीं मालूम।"

"यह भी नहीं देखता कि किससे बोल रहा है।"

"बदजात है।"

"म्मारो स्साले को।"

जितने मुंह उतनी बातें। किसी ने भी माधो की पीडा न समझी और न ही समझने की कोशिश की थी। माधो किसी तरह वहां से जान बचाकर भागा। पैसेवालों के सामने उस गरीब की आह दब कर रह गई। बडे कहलाने वालों का यह रूप है। यह तो माधो तभी से देख रहा था जब से उसने गरीब घर मे जन्म लिया था। अंजाम जानते हुए भी आज उसने जबान खोल दी थी। वहां से तो माधो बच कर निकल भागा, पर अब जाए कहां। रिक्शे का पंचर लगवाने में समय और बचे-खुचे पैसे भी समाप्त हो गए थे। उसने सोचा था कि जितनी सवारियां मिलेंगी सबके पैसे बचाकर मुनिया के लिए दवा और कुछ खाने के लिए लेता जाऊंगा। लेकिन अब उसके पास कुछ भी नहीं था। आखिर वह घर कैसे जाए। उसने अपने अन्दर ही एक फैसला कर लिया।

घर के पास के पसारी से उधार मे मिट्टी का तेल लिया और घर की ओर चल पड़ा। घर आकर उसने धीरे-से दरवाजा खोला तो देखा कि मुनिया और सुनिया दोनों एक-दूसरे से चिपककर भूखे ही सो गयी है। वह अपने कलेजे के टुकडे को निहारने लगा और बोला, "बिटिया, सोती हो का, तूने खाना मांगा होगा पर सुनिया ने "नहीं है री खाना" कह दिया होगा। बदनसीब है री तू। तेरा अभागा बाप तुमको खाना भी नहीं दे सकता। पर हमारी लाडो, आज तेरी किस्मत बदल जायेगी। अब कभी भी तू भूख से बेहाल नहीं होगी।"

उसने चारों ओर मिट्टी का तेल छिड़का और आग लगा दी। स्वयं भी पागलों की भांति बहकने लगा, फिर हंसने लगा। अब तू खाना नहीं मांगेगी।

मुनिया तेरा मुकद्दर बदल जायेगा।"

"अरी ओ मुनिया, धमका कर इसे सुलाती थी न तू। आखिर तुम्हें भी तो आज मुक्ति मिल रही है। तुमको सुख न दे सका···।" और न मालूम वह क्या-क्या बड़बड़ाता रहा। फिर यकायक चुप हो गया। शायद बोलते-बोलते थक गया था। वह पागल के समान कभी हंसता था तो कभी रोने लगता था। अचानक वह उन दोनों तड़पती हुई जानों के बीच स्वयं भी कूद पड़ा। झोंपड़ी अब तक पूरी तरह से आग पकड़ चुकी थी। रात के सन्नाटे में तीन बदनसीबों की चीत्कारें भयावह वातावरण उपस्थित कर रही थी। उनकी चिल्लाहट से लोगों की नींद खराब हो रही थी। अब धीरे-धीरे काफी भीड़ भी जमा हो गई थी। लोग बाल्टियों से आग पर पानी डाल रहे थे लेकिन छोटी-सी झोपड़ी थी। उसको राख होने के लिए समय की ज्यादा जरूरत नहीं थी। भीड़ में सुबह का वही व्यक्ति आग बुझाने वालों का नेतृत्व कर रहा था। वह एक समाजसेवी था। शायद इस वजह से भी आग बुझाई जा रही थी कि कहीं वह अगल-बगल की कोठियों को भी अपनी गिरफ्त में न ले ले। सुना है नसीब वालों पर भगवान की कृपादृष्टि होती है। उसी समय मूसलाधार पानी बरसा और झोपड़ी की आग बुझ गई। उनका अंतिम संस्कार प्रकृति ने मानो स्वयं अपने हाथों कर दिया था। आखिर उनका अंतिम संस्कार करने वाला अब था भी कौन ?

मसीहा

□ महावीर अधिकारी

खुशहाल और चादनी का प्रेम प्रकरण श्रीमती कल्याणी के लिए कभी न समझा जाने वाला रहस्य बन गया। कल तक वे उसे बचाने की कोशिश कर रही थी पर आज उसके पागलपन का प्रमाणपत्र माग रही है। उनका खयाल यह है कि खुशहाल का पागलपन बहुतों को बचाने वाला बन सकता है। शिवनाथ सेठ के घर पर मडराता हुआ संदेहों का कोहरा खत्म हो सकता है। पुलिस की पूछताछ और तफतीश पर आखिरी रिमार्क लिखने में सहायता मिल सकती है, क्योंकि खुशहाल को लेकर कोई भी सवाल करने वाला इस जवाब से संतुष्ट नही होता था कि एक कुतिया के प्रेम से वंचित होने पर एक आदमी अपनी गर्दन मे फंदा डालकर छत से लटक गया।

श्रीमती कल्याणी मुझे मेरे मरीज की मौत की सूचना देते समय अनावश्यक रूप से नाटकीय तौर-तरीके अपना रही थी, "आपका मरीज चला गया डॉक्टर साहब, ऐसे गांव को चला गया जहा से कोई लौटकर नही आता।" अलबत्ता उनकी आखों मे आसू थे। उनका शरीर निढाल हो गया था। पलकें मन्द-मन्द गिर रही थी। उनके साफ-शफ्फाक चेहरे पर जैसे कोई गंदा कपडा डाल दिया गया था।

अक्सर पागल इंसान आत्महत्या नही करते। मालकिन और उनके नौकर खुशहाल के साथ लम्बी-लम्बी बैठकों मे यह साफ पता चलता था कि खुशहाल एक गाफिल आशिक है। उसका इश्क किसके लिए है, यह उसे पता नही था। वह दुनिया का भला चाहने वाला नेक आदमी भी हो सकता था। उसे जीवन मे कभी सच्चा प्यार नही मिला। कोई ताज्जुब नही कि चादनी ने उसके अन्तर की मानवीय सच्चाई को पहचान लिया हो और मालिक के मुकाबले गरीब खुशहाल की ओर उसकी रगबत हो गयी हो। यह शायद खुशहाल के जीते-जी उसे सही तौर पर न पहचानने की असमर्थता ही थी कि मैंने थोड़ी बेचैनी के साथ श्रीमती कल्याणी से पूछा था कि आखिरी बैठक में

भले-चंगे आदमियों की तरह गुफ्तगू करने वाला खुशहाल एकदम इतना बेइख्तिशार कैसे हो गया श्रीमती कल्याणी ! जरूर उसके मन को कोई भारी आघात पहुंचा या पहुंचाया गया होगा। आप सोचती होंगी कि उसके आघात से आपको कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। आपके घर में वह सिर्फ एक नौकर था। लेकिन नौकर तो वह हमेशा से था। उसे बचाने की कोशिश करने का उद्देश्य क्या था ?"

मेरा सवाल सुनकर मालकिन ने ठंडे पानी के गिलास की प्रार्थना की थी। वे शायद अपने तर्क को मजबूत बनाने के लिए वक्त चाहती थीं। मैंने उन्हें अकेला छोड़ दिया था।

"चांदनी ही उसकी मौत का कारण बनी," श्रीमती कल्याणी कह रही थीं, "वह शायद हद से ज्यादा उसकी चहेती हो गयी थी। कितनी खौफनाक बात है। जितने वक्त वह उसके साथ रहती, उसे डरावने सपने नहीं आते थे। कुह-कुह करके रात-दिन वह कुतिया उसे चूमती-चाटती रहती थी। बच्चों और बहुओं से भरे उस घर के लिए उनका सम्बन्ध कानाफूसी का विषय बन गया था। यह नाटकीय पशु-प्रेम हमारे घर में नहीं चल सकता था। चांदनी का वियोग उससे सहा नहीं गया। लेकिन इन्सानों की दुनिया में ऐसा नहीं होता। कोई शरीफ खानदान उसे बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

जितनी ममता श्रीमती से उसे मिलनी चाहिए थी, वह नहीं मिली, यह सच्चाई उन्हें बताने की कोशिश मैं कर रहा था। घर का ही एक सदस्य वह होता तो अलग बात होती। डॉक्टर को नैतिक, सामाजिक दायित्वों के निभाने की सलाह नहीं देनी चाहिए। सहायता की उम्मीद नहीं की जाती है तो वैसे शब्दों के कहे जाने का मौका ही नहीं आता है। हम अक्सर इसीलिए कहते हैं कि बेगानों के आचरण का भी हमारे जीवन पर असर पड़ता है। किसी को बेगाना मानने से हम फर्ज से अपने को बरी नहीं कर सकते।

"किसी पर रहम करना भी तो गलती हो सकती है, डॉक्टर साहब ! घर छोड़ने की बात कहते ही वह गिड़गिड़ाने लगा। मुझसे ही प्रेम-निवेदन करने लगा। उस घर को छोड़कर वह मर जायेगा। मेरे रहम का यह बदला दिया उसने। उस कुतिया का प्रेमी था और उसी सांस में मुझसे प्रेम करने की हिमाकत ! वह क्या समझता था मुझे ! उस कुतिया से भी गयी-बीती !"

"मैं एक डॉक्टर हूं, श्रीमती कल्याणी !" मैंने कहा था, "डॉक्टर से कुछ नहीं छिपाना चाहिए। जब आप उसे स्वामी के आश्रम से उठा लायी थीं, वह कौन-सी भावना थी कि आप अपने को न रोक सकीं ? हो सकता है, आपको बोध न हुआ हो, लेकिन आप उसे प्रेम करने लगी हों ! आपके मन में उसके लिए कोई विशेष भावना अवश्य थी, उसे कुछ भी कह लीजिए।"

"जरूर हो सकती है, डॉक्टर साहब ! पर वह वासनायुक्त प्रेम नहीं था,

मैं आपको यकीन दिलाती हूं। उसके चेहरे पर बड़ा मोहक भोलापन था, बडा निरीह, दयनीय और घबराया हुआ-सा था। मैंने सोचा था, मेरे घर मे वह पशुवत्, निरीह प्राणी पड़ा रहेगा। मुझे क्या मालूम था कि वह पागल है और रहम की इतनी बड़ी सज़ा देकर जायेगा। ज़रा सोच कर देखिये, अगर आपकी तरह मेरे प्रति और बच्चे भी वैसा ही निष्कर्ष निकालें, तो मेरी हालत क्या होगी।'

मालकिन का वह दबा हुआ रुदन एक अजीब-सी कंपकंपी पैदा करने वाला था। शायद पागलपन से ही भरा था। खुशहाल एक अभिशप्त देव की तरह नजरें बचाता हुआ क्लीनिक मे दाखिल हुआ था और मुझे फौरन शक हुआ कि वह गाफिल आशिक है। मानता हूं, अपने इस नये मरीज को देख कर मेरे मन में एक गुदगुदी पैदा हुई थी। खुशहाल पहला मरीज था, जो यह कहता हुआ आया था कि उसके स्वप्नों का इलाज यदि नही हो सका, तो वह मर जायेगा।

खुशहाल की आंखें अन्दर धंसी हुई थीं, उनमें एक विलक्षण चमक थी, जिसे पहली नजर मे मैंने एक प्रेमी की नजर के रूप में देखा था। वह नाखून काटने का अभ्यासी था। उसका हाथ देखकर मैंने निश्चय किया था कि उसके बेतरतीब नाखून उस क्षत-विक्षत आदमी की तरह बन गये हैं, जिसे कई दुश्मनों का सामना करके जीते रहने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है।

इसके अलावा मुझे अपने यश पर भी भरोसा था। मेरे क्लीनिक में आकर कोई रोगी हताश नही हुआ था। खुशहाल अन्तिम दिनों में बिलकुल चंगा होने लगा था। उसने बड़े तपाक से मेरी उस नसीहत को स्वीकार किया था कि वह अपने मन को किसी वस्तु, ध्येय या जीव में अटकाकर अपने दुःख को भूलने की कोशिश करे। उसकी इस कोशिश मे चादनी ने उसकी बेहद मदद की थी। चादनी वाकई इतनी चपल, बलिष्ठ, मुती हुई कुतिया थी, जिसके आने पर सारा क्लिनिक एक अजीब स्फूर्ति में भर गया था। खुशहाल को क्लीनिक में देर लग जाने के कारण वह कार में बैठी-बैठी बेचैन हो गयी थी और उसकी गन्ध के सहारे क्लीनिक के दरवाजे पर आकर कुहकुहाने लगी थी।

"कैसे सपने आते हैं तुम्हें, खुशहाल?" मैने उससे पूछा था।

"बड़े अजीब सपने आते है, डॉक्टर साहब?" खुशहाल ने अपनी कमजोर आवाज मे कहा था। मुझे सपने में गांधीजी दर्शन देते है, और कहते हैं कि बेटा, हाथ-पर-हाथ रखकर मत बैठो, दुनिया का उद्धार करो, बुराई को खत्म कर डालो और नेकी को बचाने के लिए अपने को कुर्बान कर दो!"

"कहां तक पढे हो?" मैंने डायरी खोल ली थी।

"दसवीं की परीक्षा नहीं दे सका।"

"आजकल क्या काम करते हो?"

"रसोई बनाता हूं।"

"कभी ट्रेड यूनियन में भी काम किया है?"

"जी नहीं, घरेलू नौकरों की यूनियन कुछ ऐसे लोगों के हाथ में है, जिन्हें मैं पूरी तरह नैतिक नहीं मानता।"

"तुम्हारे बाप ट्रेड यूनियन के नेता रहे होंगे?"

"मेरे बाप का देहान्त मेरी याददाश्त के पक्के होने के पूर्व ही हो चुका था।" खुशहाल की आंखों की चमक बुझती जा रही थी।

"और क्या सपने आते है?" मैंने उसे जगाया।

"कभी-कभी मां शक्तिसिंह पर चढ़कर आती है और अपने त्रिशूल से मुझे जगाती है और कहती है कि खुशहाल तू कब तक सोयेगा? तब मुझे दिनों-दिन आत्म-सताप होता रहता है, काम में जी भी नहीं लगता, काम में जी भी नहीं लगता। मालिक के बर्तन-भाडे फूट जाते है। वह तो अच्छा है कि मालकिन अच्छी हैं, कुछ भी नहीं कहती। सिर्फ इतना कहती है कि खुशहाल, अपने सपनों का इलाज कराओ। वह चाहे जितनी फीस देंगी, बड़ी दयावान हैं।"

"तुम इतनी अच्छी तरह अपनी बात कह लेते हो, बीमार तो नहीं मालूम पड़ते।"

"भाषा कहा अच्छी है, डॉक्टर साहब!" खुशहाल थोड़ा विनीत भाव से बोला था, "जब मैं स्वामी सन्यासानंन्द का भोजन बनाता था, तब सुनते आप मेरी भाषा।"

"स्वामी सन्यासानन्द का भोजन पकाना क्यों छोड़ा?"

खुशहाल चुप रह गया था। नाखून काटने की कोशिश करने लगा था। फिर बोला, "इन्ही मालकिन ने कहा, हमारे साथ चलो।"

"तुम पर इतनी कृपा क्यों है? बहुत अच्छा खाना बनाते हो?"

"जी हां, बड़े लोग हैं, दयावान है, इसीलिए कृपा करते है।"

"बड़ा परिवार है? सभी कृपा करते हैं?"

"जी हां, बहुत बड़ा परिवार है, बहू-बेटियों से भरा है, मोटर कारें हैं, छोटे बच्चों के पास बिल्लियां और बडों के पास कुत्ते-कुतिया। एक-एक के पीछे एक-एक नौकर है। लेकिन, सब बड़े दयावान है।"

उस समय तक भी खुशहाल ने चादनी का जिक्र नहीं किया था। बोलते-बोलते वह अपने ही विचारों में खो-सा गया, नाखून उसने काट लिया था और मेरी आंखों में एक बार झांककर खिड़की के बाहर देखने लगा था। फिर

शायद सप ना चाहता था।

"उनमें न किसी को ऐसे सपने नहीं आते ?" मैंने पूछा था।

"जी नहीं, किसी को नहीं आते।"

"इस घर मे नौकरी छोड़ सकते हो ?"

"नौकरी तो छोड़नी ही पड़ेगी, डॉक्टर साहब!" खुशहाल स्वपनिल-सा बोला।

"नौकरी छोडकर क्या करने का विचार है ?"

"विचार तो कितने है। आप ही कोई प्रबन्ध करा दीजिए। मुझे अपनाकर किसी को दु ख नहीं होगा! मुझे मा शक्ति पर पूरा विश्वास है, वह आदेश देंगी और सब ठीक हो जायेगा। यह दुनिया स्वर्ग बन जायेगी।"

"मा शक्ति तुम्हें आदेश देती है ?" मैं अपनी हंसी रोक नहीं सका था।

"देती हैं, डॉक्टर साहब! कहती है, खुशहाल, तेरे जैसे चार भक्त मिलकर पाप का नाश कर सकते हैं। एक मैं हूं कि सोया पड़ा हूं! इधर बापू बेचैन है कि मैं कुछ नहीं करता। उनकी बेचैनी सही नहीं जाती। मैंने विनोबा जी को, बाबू जयप्रकाश नारायण को, बडे-बडे सम्पादकों को लिखा, मां शक्ति का उपदेश भी लिख भेजा। कही से सन्तोषजनक जवाब नहीं आया। सारी दुनिया सोयी पडी है। किसी को पाप नहीं दीख रहा है!"

केस हिस्ट्री की पहली क़िस्त पूरी हुई थी। खुशहाल की शादी नहीं हुई, उम्र चौबीस साल, चार बहन, पाच भाई, सभी दूर देहात में रहते हैं। खुशहाल उनकी पढाई-लिखाई, कपड़े-खाने के लिए पैसा भेजता है। पैसे का अभाव होने पर कभी-कभी मालकिन सहायता करती है, घर वालों से छुपाकर भी सहायता करती है, बड़ी खूबसूरत है। दूसरी बहुएं उनमे भी ज्यादा खूबसूरत है। उसके हाथ का बना खाना सभी को पसन्द आता है। बडा धार्मिक वातावरण है। उसके सपनों की बीमारी को सिर्फ एक ही मालकिन जानती हैं!

उसके जवाब किसी खास निष्कर्ष पर नहीं पहुंचने देते थे। हो सकता है, स्वामी संन्यासानन्द के विचारो का प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पड़ गया हो और वह सच्चाई के साथ जनसेवक बनना चाहता हो। लेकिन, महात्मा गांधी और मा शक्ति के सपनों से वह बीमार क्यों पड़ गया! आत्म-हनन की बात सोचने लगा! नींद कम हो गयी! हाजमा भी खराब लगता है। नींद की दवाई देकर देखें, थोड़ा माहौल मे परिवर्तन करें!

"चिन्ता मत करो खुशहाल, तुम ठीक हो जाओगे!" और ऐसा कहने पर खुशहाल ने दवाइयों का नुस्खा उठा लिया था। मालकिन से टेलीफोन करके फीस की अदायगी का प्रबन्ध करने की प्रार्थना की थी और यह भी जिक्र कर दिया कि वह रक़म धीरे-धीरे उसके वेतन मे से कटती रहेगी।

जाते-जाते मैंने खुशहाल से कहा कि वह अगली बैठक के लिए तैयार होकर आये, अपने बचपन तक की सब उल्लेखनीय घटनाएं याद करके बताये।

खुशहाल के जाने के बाद मैंने अपना माथा ठोका था। गनीमत थी कि चश्मा मेज पर था और मुझे अपनी विधवा बुआ की याद आ गयी, जो बात-बात मे माथा ठोकती थी, जिनकी नकल से मुझे यह आदत पड़ गयी और अब वह निरन्तर चश्मा टूटने का कारण बन गयी थी। खुशहाल मेरी बुआ का दूसरा रूप था।

उस दिन मन-ही-मन मैं यह शर्त लगा रहा था कि खुशहाल निश्चय ही गाफिल आशिक है और उसकी जड़ें मालकिन के परिवार मे है। अगली बैठक के दिन मैंने इस सन्देह के निवारण या पुष्टि के लिए खुशहाल की मालकिन को टेलीफोन किया और झिझकते हुए उनसे बीमार के साथ आने का आग्रह किया था और मुझे वाकई अचरज हुआ था कि वह आने के लिए राजी हो गयी।

मालकिन को देखकर मैं उस दिन भी सकते मे पड गया था। लगभग पचास वर्ष की आयु की वह प्रौढ महिला, अत्यन्त सम्भ्रात और सही अर्थों मे शिक्षित लगी थी। वह आज भी खूबसूरत थी। लावण्य और कमनीयता के स्थान पर एक भद्र मातृत्व उनके समस्त व्यक्तित्व से मुखर हो रहा था।

"खाना बनाने के अलावा खुशहाल की दूसरी क्या ड्यूटियां हैं ?" मैंने मालकिन से पूछा।

"बच्चों को स्कूल छोड़ना और उन्हे वापस लाना।"

मैंने खुशहाल की ओर देखकर कहा था, "सपनो के बाद वह चिड़चिडा तो नही हो जाता ?"

मालकिन बड़ी करुण मुद्रा से हल्की-सी मुस्करायी। खुशहाल ने आंखें नीची कर ली।

"बच्चों की ड्यूटी ही इसे खुश रखती है," मालकिन ने कहा, "वरना कई-कई बार अकेला दीवार पर सिर पटकने लगता है। हम तो बहुत घबरा जाती हैं।"

"कुछ दिन के लिए इसे गांव भेज दीजिये।"

"पूछिए इसी से, हमने जबरदस्ती इसे घर भेजा था कि नही ! लेकिन, बीमारी इसका पीछा छोड़े तब न ! क्यों खुशहाल, तुम्हें क्या जरूरत थी कि सरपंच से बदकलामी करो ? डॉक्टर साहब, इसने थानेदार को कितना ऊल-जलूल कहा ! अच्छा था कि उस इलाके के एम०एल०ए० मेरे पति की जान-पहचान के थे, छुड़ा लिया, वरना आज चक्की पीसता होत।"

"वह अच्छा होता, मालकिन !" खुशहाल की माँगें दबदबा गयीं।

"देखिये, डॉक्टर साहब," वह गम्भीर हो गयी थीं, "इसका खयाल है दुनिया में सबके सब लोग चोर, फरेबी और दगाबाज हैं।"

यह गनीमत थी, खुशहाल अपनी आंखों से जमीन कुरेद रहा था।

"यह मेरा कहना नहीं है, मालकिन !" उसने नजरें नीची किये हुए कहा था, "यह गांधीजी और मां शक्ति का कहना है !"

मैंने बात बीच में ही पकड़ी, "उनसे कहो कि औरों को भी ऐसे सपनों से निहाल करें !"

खुशहाल ने बेबसी की नजर से मेरी ओर देखा था और फिर नाखून दांतों के बीच में देने लगा था।

मालकिन ने खूबसूरत बटुए में से फीस की रकम निकाली और दो-चार-छह बैठकों की फीस पेशगी मुझे देनी चाही थी। खुशहाल अपनी मालकिन को कार तक छोड़कर वापस आया, तो उसका चेहरा सख्त था।

"आपका विचार है कि बापू और मां शक्ति हर किसी को दर्शन देंगी ?"

"क्यों, उसमें पात्रता का प्रश्न है क्या ?"

"अब हम क्या कहें ?"

"कुछ धन-दौलत भी मांगो शक्ति मां से ! खाली हाथ मेवा नहीं होती !"

"आपका भी खयाल है कि मैं बीमार हूं ?"

"तुम्हारी मालकिन का भी तो यही खयाल है। दीवार से सिर टकराना बीमारी का लक्षण है। पर तुम अच्छे हो जाओगे। हम अच्छा कर देंगे।"

खुशहाल चला गया।

पता चला कि अपने घर में खुशहाल के अस्तित्व का मालिक को एक दिन सहसा भान हुआ। मालकिन ने बताया कि वे एक दिन दफ्तर से लौटकर आये तो बड़ी ऊंची आवाज में चांदनी का नाम लेकर पुकारने लगे। दफ्तर से लौटने के बाद चांदनी के साथ खेलने का उनका पुराना अभ्यास था। जितने ज्यादा थके होते थे, उतनी ही देर तक उसके साथ खेलते थे।

चांदनी भी एक स्वाभाविक पालतू के रूप में सम्पूर्ण तन्मयता के साथ उनके पैरों से लिपटती थी। कुंह-कुंह करके अपना प्यार जाहिर करती थी। उसके उस आचरण का मालिक के चेहरे पर ठीक वैसा प्रभाव पड़ता था जैसे प्रातःकाल संयोग से खोले गये रेडियो पर प्रसारित भक्ति संगीत का पड़ता था। श्रीमती. कल्याणी की आंखों से अपने आदमी के व्यक्तित्व का कोई कोण ओझल नहीं था।

शिवनाथ सेठ-परिवार के दैनिक जीवन के सामान्य कार्यक्रम में जो व्यवधान पड़ा था उसके लिए मुख्य रूप से खुशहाल जिम्मेदार था।

मालिक जिस दिन दफ्तर से बहुत मुरझाये हुए आते थे तो चांदनी को पास-पास न देखकर उसके बारे में बहुत पूछताछ करते। एक बार उनसे बताया गया कि चांदनी रसोई-घर में नये रसोइये के साथ है। उसके साथ जरा हिलमिल गयी है। जवाब सुनकर वे मालकिन पर बरस पड़े थे, "कौन है ये नया रसोइया, कुतिया हमारी है, दूध-पाक खिलाकर हमने उसे पाला है और वह रसोइये के तलुवे चाटती है, तुम्हारे बराबर देखते रहने पर भी यह सब हो रहा है।"

मालकिन भी इस बात के उत्तर में बिगड़ गयी थी। "एक कुतिया में तुम्हारी दिलचस्पी कब से इतनी घनी हो गयी ? मैं साढ़े पांच फिट की औरत मुजस्सिम तुम्हारे सामने खड़ी हूं। मुझको नहीं कहा जाता कि तुम्हारे तलुवे सहलाऊं, जूते के फीते बांधू और खोलूं।"

सख्त निगाहों से देखते हुए मालिक तब तो चुप हो गये थे। ऊंची आवाज सुनकर बच्चे अपने पालतुओं और आयाओं के साथ माता-पिता के नजदीक खिसक आना शुरू हो गये थे। सभी ने पूरा सवाद उड़ता-उड़ता सुन लिया था। उनकी भावात्मक प्रतिक्रिया में मालिक को अपना समर्थन नहीं दीखा था। उस समय वे बात टाल गये थे और किसी बहाने से घर से बाहर चले गये थे।

मालकिन के अनुसार उनका यह आचरण भी चांदनी की स्वामिभक्ति को परखने का एक बहाना-मात्र ही था। खुशहाल के उस घर में आने के पहले, चांदनी हमेशा दरवाजा बन्द होने तक उनकी गाड़ी के आस-पास उछलती-कूदती रहती थी, और उनकी ताकीद सुनकर ही बंगले की तरफ वापस दौड़ती थी। उस दिन मालकिन ने पहली बार देखा था कि कार के पीछे धूल के गुब्बार के अलावा कुछ भी नहीं था और वह गुब्बार धीरे-धीरे उनके घर में प्रवेश कर रहा था। स्वामिभक्ति की कसौटी पर चांदनी कुतिया के प्रेम को वे भी बार-बार ऐसे कस रही थीं जैसे उसकी गर्दन उमेठ रही हों।

खुशहाल के आने के बाद एक दूसरी तरह से भी मालकिन के घर का माहौल अनजाने बदल गया था और बदलता जा रहा था। सुबह उठते ही वह अपनी रसोई को इतनी तन्मयता के साथ साफ करता था मानो वह मन्दिर हो। धूप-दीप, नैवेद्य से पूरित उसका रसोई-घर था। हर सुबह एक बहुत छोटी-सी घंटी की आवाज से यह पूजा-कक्ष भर उठता था। कभी-कभी छोटे बच्चे भी उसमें शरीक हो जाते थे, जिन्हें रोकना मुश्किल था। गनीमत यह थी कि मालिक ने अब तक यह सब नहीं देखा था। ईश्वर के दरबार में भक्त

की गरीबी और अमीरी नहीं देखी जाती। मालकिन अपने संस्कारो से यह जानती थी। जमीन से ऊपर उठकर जीने वाले बच्चों के लिए वह सम्पर्क मालकिन की नजर मे बहुत अच्छा था। वे बराबर इस इन्तजार में थी कि एक बार मालिक महोदय भी इस चीज को टोक तो दें।

फिर भी मालकिन इस बारे मे साफ नही थी कि उनके तीखे संवाद के पीछे पति के कुतिया-प्रेम पर आरोप की भावना थी या कि वे खुशहाल की वंचना से ही द्रवित थी या कुल मिलाकर अपनी ही वंचनाओं को कुतिया और खुशहाल के प्रेम-प्रकरण में देख रही थी। उन्होने खुशहाल को बुलाकर यह जरूर समझाया था कि वह कोई कार्य ऐसा करे कि चादनी उससे विमुख हो जाय और वह पहले की तरह अपने मालिक को खुश करती रहे। खुशहाल ने विनयपूर्वक यह सुझाव स्वीकार किया था और यह आश्वासन देने की कोशिश की थी कि उनकी खुशी के लिए वह काम छोड़कर जा सकता है। अन्दर ही अन्दर श्रीमती कल्याणी को यह विश्वास था कि खुशहाल ने ऐसा कोई विशेष अनुष्ठान नही किया था जिसकी ताकत से चांदनी उसके प्रति विशेष रूप से अनुरक्त हो गयी है। उनके मतानुसार कुतिया अपने निर्णय मे स्वतन्त्र थी। खुशहाल ने इतना जरूर कहा था कि मालकिन खुद ही मालिक से यह क्यो नही पूछती कि एक मामूली-सी कुतिया के पीछे वे अपनी देवी सदृश पत्नी से इस तरह सख्त कलामी क्यो करते है।

एक शाम को मालिक अपने एक पुराने मित्र के साथ आये और उन्होने हुक्म दिया कि चादनी के गले मे पुराना पट्टा बांधा जाय और चांदी की वह जंजीर भी खोज निकाली जाए, जो शिवनाथ सेठ को कुत्ते-कुतियों की प्रदर्शन-स्पर्धा मे चांदनी के लिए भेंट मे मिली थी। कारण यह बताया गया कि कुछ और बच्चे देने के लिए उनके एक मित्र को चांदनी की जरूरत है।

शाम को खाना-पीना हो चुकने के बाद शिवनाथ सेठ अपने मित्र के साथ गाड़ी में बैठकर चादनी को लेकर चले गये। मालकिन और खुशहाल दोनों बहुत खुश थे। दोनों को ही अव्यक्त रूप से यह आशा भी थी कि वैसा होने से घर मे व्यर्थ के बवंडर खड़े होने का कोई कारण नही रह जायगा।

लेकिन ऐसा नही हुआ। चांदनी ने उनकी अच्छी उम्मीदो पर पानी फेर दिया। चार दिन बाद चादी की जंजीर समेत शिवनाथ सेठ के घर चादनी वापस भाग आयी। आते ही वह रसोई-घर में दुबक गयी थी। लगता था जैसे कई दिन से उसने खाया-पिया भी नही। हिलाने-डुलाने से और नाम लेकर पुकारे जाने पर वह शिथिल-सी कुंह-कुंह करके अपनी दयनीय हालत का इजहार करती थी। खुशहाल तो उसे छूने के लिए भी तैयार नहीं था। भयभीत-सा वह अपने काम में लगा रहना चाहता था। उसमे हाथ-पांव फूले-

हुए-से थे। कीमती क्रॉकरी कई बार उसके हाथों से गिरकर टूट गयी थी। कुतिया रसोई-घर मे हटती ही नही थी।

खुद श्रीमती कल्याणी सेठ की समझ मे नही आ रहा था कि शाम को मालिक के आने पर क्या होगा। वे किसी तरह भी यह निर्णय नही कर पाती थी कि कुतिया को लेकर वे स्वयं कैसा आचरण करेंगी। कुतिया के कान में यह नही कहा जा सकता था कि वह अपने हित को समझे, मालिक की इच्छानुसार उनके दोस्त के यहां रहकर बहुत-से बच्चों को जन्म दे। इस घर को भूल जाय, खास तौर से उस गरीब रसोइये की मुहब्बत से अपने को मुक्त कर ले। उस गरीब के पास सिर्फ रामधुन टुनटुनाने वाली एक घण्टी है। मालिक के क्रोध का शिकार होकर वह भूखों मर जायगा।

चांदनी की उदास नजर में श्रीमती कल्याणी की दुनिया की मौन एवं मुखर सभी प्रकार की तस्वीर दीखती-सी लगती थी। खुशहाल के बाहर जाने के वक्त उसने पीछे-पीछे चलने की कोशिश भी की थी लेकिन चल नहीं सकी। उसकी कमजोरी बेइन्तहा बढ़ गयी दीखती थी। मालिक ने बंगले में घुसते ही चादनी को पड़े देख लिया था। चादनी के लौट आने की गुस्ताखी उनके लिए असह्य हो उठी थी। वे बेंत लेकर उसे मारने दौड़े तो खुशहाल बीच मे आ गया और पीठ पर बेंत की सख्त मार खाकर भी बड़े विनय से बोला था, "यह बीमार है हुज़ूर।"

मालिक की आखो मे निरन्तर अंगारे बरस रहे थे। यह तो भली बात थी कि नौकरो के मुह लगने की आदत शिवनाथ सेठ को कभी नही पडी। वे पीछे लौट गये थे। अगर वह सख्त बेंत चादनी की पीठ पर पड़ते तो न जाने उस गरीब का क्या होता। पशु-हत्या का अपराध उनके सिर पड जाता। मालिक ने चादनी के प्रति अब दया-माया से अपने को मुक्त कर लिया था। युद्ध की घोषणा के स्वर मे उन्होने मालकिन को बोल दिया था कि चांदनी वहां रहेगी जहां वे चाहेंगे, वरना वे उसे गोली से उड़ा देंगे। उन्हें बासी मोहब्बत मन्जूर करने की आदत नही है।

ऐसी ही थी शिवनाथ सेठ की जिद्दी आदत। आज एक पशु उसका शिकार हो रहा था। उनके अपने बच्चों की हालत उससे जुदा नही थी। कार-व्यापार में तो वे लोगो के साथ बारहा मारपीट कर चुके थे। मुकदमों मे हार हो जाने पर भी उनका दिमाग इतना बिगड़ा नही लगता था। झगड़ा जितनी कमाई के लिए करते थे, उससे कहीं ज्यादा वकीलों की भेंट चढ़ा देते थे, लेकिन बात छोटी नहीं होने देते थे।

अपने पति की अनेक-अनेक अर्थों वाली बातें सुनने का श्रीमती कल्याणी

को पुराना अभ्यास था। गादनी दुनिया को लेकर वे किसकी वासी मोहब्बत की तरफ संकेत कर रहे थे, यह बात उनके दिमाग में पूरी तरह उभर नहीं सकी थी। फिर भी उन्होंने निर्णय कर लिया था कि यह दुनिया उस घर में नहीं रहेगी। अगर रहेगी तो खुशहाल को वहां से निकलना होगा।

सप्ताह बाद मालकिन ने कहा था कि खुशहाल दिन भर सोया पड़ा रहता है। मुझे सुनकर चिन्ता नहीं हुई थी। दवाइयों का वैसा असर स्वाभाविक था। वकील मालकिन उसे सपने अब नहीं आते हैं, लेकिन जागने पर वह और भी दुःखी हो जाता है। कहता है कि मां शक्ति उससे रूठ गयी हैं। उसकी आँखें डबडबायी रहती हैं। घर में सबको पता चल गया है कि वह मानसिक रोगी है। उनके पति ने उसकी दवाइयां देखकर ही पहचान लिया है। वे खुशहाल को एक मिनट भी घर में रहने देना नहीं चाहते थे।

"क्या खुशहाल को पागलपन से आप बचा नहीं सकते, डॉक्टर साहब ?"

"हम तो इसीलिए क्लीनिक खोलकर बैठे हैं, महोदया'''" मैंने कहा था, "हमारे देश में बावन आदमियों के पीछे एक मानसिक रोगी है। हम लोगों के पास काम ही कहां है। आप फिक्र न करें। यह केस बहुत गम्भीर नहीं है।"

अगली बैठक में खुशहाल ऐसा कुछ भी नहीं बता सका, जो उल्लेखनीय हो। स्कूल में मुंशी मुंशीजी के हाथों पिटाई, घर में गोबर-मैला साफ करना और बाहर ढोर चराना, हल जोतना, कभी-कभी कुटेव का शिकार होना, मार-पीट करना, या चाचा के भारी हाथ के थप्पड़ बर्दाश्त करके चुपचाप काम पर लग जाना, ये सब मामूली-सी बातें थी।

"तुमने कभी बापू का प्रवचन सुना है? सुना होगा, तब तो तुम्हें नाक साफ करने की तमीज भी न रही होगी।

"चाचा अभी है ?"

"है। बड़े जईफ हो गये हैं।"

"आठो भाई-बहन चाचा से ही है ?"

"जी।"

"तुम ही इनकी परवरिश करते हो? चाचा तुम्हें प्यार करते है ?"

"जी नहीं। मेरी शक्ल देखते ही कुत्ते की तरह भूकने लगते है।"

"तुम्हारी जगह मैं होता तो घर से भाग गया होता।"

"मुझे भी भागना पडा था। एक दिन मां ने चार रोटियां बांधकर, स्वामीजी के आश्रम में विद्या प्राप्त करने के लिए भेज दिया था।"

"अच्छा, तुम्हारी मां वाकई बड़ी बुद्धिमती थी।"

"अभी है।"

"हां, हां, अभी तो होगी ही। दो बच्चों की मां है, सेहत तो अच्छी ही होगी।"

खुशहाल थोड़ा मजा गया था।

"तुम भी शादी कर लो, खुशहाल। सब ठीक हो जायेगा।"

"मैं और शादी!" खुशहाल जैसे चौंक उठा, "मैं गृहस्थ नहीं बन सकता! मुझे जनता का उद्धार करना है।"

"स्वामी जी के यहां से क्यों भागे ?"

खुशहाल ने आंखें नीची कर लीं।

"अगर अच्छा होना है, तो कुछ भी छिपाओ नहीं, खुशहाल। जाने कौन-सी चीज आदमी के मन पर असर कर जाती है। उसके पकड़ में आते ही आदमी चंगा हो जाता है।"

"कुछ पढ़ाते-लिखाते तो थे नहीं। बस, पैर दबवाते रहते थे।"

"ऐसे ही होते हैं ये स्वामी लोग! पहले खुद पैर दबाते हैं, फिर दूसरों से दबवाते हैं।"

आखिरी बैठक में खुशहाल मुझसे भी नाराज हो गया था। उसकी समझ में यह बात बिल्कुल नहीं आ रही थी कि एक मामूली-सी कुतिया को लेकर मालिक ने इतना बड़ा तूफान क्यों खड़ा कर दिया! अगर वे सरकारी आदमी होते तो बीमार कुतिया पर बेंत लेकर इस तरह न पिल पड़ते। कमीज उतारकर उसने अपनी पीठ दिखायी थी। खून जैसी लाल पड़ी हुई लकीरें थीं। ऐसा भी क्या गुस्सा था, किस बात पर था। अगर उनके हाथ में पिस्तौल आ जाती तो वह पिस्तौल उस बेचारी पर दाग देते!

मैंने उसे समझाया कि पिस्तौल भी तो खुशहाल की पीठ पर ही दागी जाती। क्या मां शक्ति के प्रताप से खुशहाल चांदनी को बचाने के लिए अपनी पीठ पर गोलियां सहन कर लेता। आखिर वह ऐसा पागलपन करने पर क्यों उतारू हो गया है! उनकी कुतिया है, वे चाहे जैसे रखें। सैकड़ों मालिकों के घर में कुतियां पली हुई हैं। क्या यह खुशहाल का कर्त्तव्य है कि वह सबकी रक्षा करता फिरे ? उससे जुल्म न बर्दाश्त होता हो तो आंखें बन्द करके उस घर से बाहर निकल जाये। यहां सवाल हिंसा-अहिंसा का या पशु-प्रेम का नहीं है, सवाल यह है कि उनके नौकर को क्या हक है कि वह मालिक और कुतिया के बीच में आये। सारे परिवार की शान्ति भंग हो गयी है। उसका फर्ज भी तो कोई बनता है ?

खुशहाल के नथुने फूल गये।

"सवाल असल यह है कि एक नौकर को ऐसी पात्रता क्यों मिली कि मालिक की कुतिया उसमें ऊपर नौकर को मानने लगी।" वह बोलता रहा,

"आप कहते हैं कि मा शक्ति हमें ही सपने मे आदेश क्यो देती है। आप खुद ही देख लीजिए। उनमे क्या उम्मीद करेंगी वह। कभी धर्म-कर्म जाना है उन्होंने। वह तो अच्छा है कि मालकिन धर्म-कर्म मे आस्था रखती है। उन्ही के सुकर्मों से यह कुनबा फल-फूल रहा है। वरना उन सबके लक्षण देखने लायक हैं? नरक जैसा हो जायगा वह घर, अगर मालकिन की आंखें बन्द हो जायें। भगवान उन्हे बनाये रखे।"

मैंने उसकी बात का मर्म समझ लिया था। वह सब कुछ जानता था। शायद वह मजबूर था। कुतिया के प्रेम की अवहेलना करने की हिम्मत उसमें नही थी। वह मालिक के प्रति हिंसक भाव से भर उठा था। बता रहा था कि उसका काम घर मे सिर्फ रसोई बनाना था लेकिन क्यो बच्चो को लेकर बगीचे मे जाता है। क्यो उन्हे भजन-पूजन का महत्व समझाता है। विदेशी रंग मे रंगे उनके परिवार मे भगवान के नाम का पौधा उसने क्यो लगाया। अगर आज कोई सुने, उन बच्चों की प्रार्थना-कीर्तन तो उसके मन पर प्रभु का नाम अंकित हो जाय। और वह कुतिया जरूर कोई भ्रष्ट देवी है। कैसे प्रभु के नाम का कीर्तन सुनती बैठी रहती है। न चूहे लपकती है, और न बिल्ली का पीछा करती है।

जी हा, चूहे-बिल्ली तो सुरक्षित हो गये हैं लेकिन मिया खुशहाल की जान की खैर नही है। भला इसी मे है कि वह वहा से निकल जाय। खुशहाल इस बात से सहमत था कि अगर चादनी को लेकर खुशहाल वहा से खिसक जाय, तो किसी को कुछ भी महसूस नही होगा। लेकिन वह तब तक उस घर में नही जायगा, जब तक मालिक का दिल साफ नही हो जाता। अगर वह अपने फर्ज से भाग खडा होगा, तो मा शक्ति उसके सीने में त्रिशूल भोक देंगी। अच्छा ही करेंगी।

"अबे तू मरने के लिए क्यों घूम रहा है खुशहाल." मुझे गुस्सा आने लगा था, "अपनी हैसियत को तो समझ। तू कोई पीर-पैगम्बर है कि दूसरों के मामलो मे अपनी टाग अड़ाता है?"

"अगर कोई पीर-पैगम्बर भी आपको मिल जाता, तो आप उसे नींद की गोलियां देना शुरू कर देते डॉक्टर साहब! अच्छा हुआ, आप जैसा कोई डॉक्टर हजरत ईसा मसीह और हजरत मोहम्मद को न मिल गया। बुद्ध या महावीर के जमाने में न पैदा हो गया। सारी दुनिया मुझे ही पागल कहती है?

"मैं बुरा नही मान रहा हूं डॉक्टर, लेकिन आगे आपको तकलीफ नही दूगा। पर मैं यह नहीं समझ पाता कि गोलिया देनी ही हैं तो आप मालिक को गोलिया क्यों नहीं खिलाते। उस कुतिया को क्यों नही समझाते कि खुश-

हाल को भूल जा। मुझे ही देने हैं। क्योंकि मैं आपके पास आया हूं। जो आपके पास नही आता क्या वह पागल नही हो सकता ?"

ऐसे खुशहाल के लिए पागलपन का प्रमाण-पत्र चाहिए मालकिन श्रीमती कल्याणी सेठ को। वे बैठी हैं सिर नीचा किये हुए। यह तो इनके शौहर का भी सिर नीचा कर गया। अगर खुशहाल को अन्त तक सांत्वना मिलती, अगर उसे सहारा मिलता, अगर वह आचार्य विनोबा भावे की शान्ति सेना का सिपाही बन सकता तो वश शिवनाथ सेठ का हृदय परिवर्तन करने मे कामयाब हो जाता। कामयाब वैसे कौन होता है। सहारा किसे मिलता है। मैं खुशहाल की याद को ऐसा सोचकर अपमानित क्यों कर रहा हू। मैं अपने पेशे के लिए फीस के व्यामोह से ऊपर क्यों नही उठ पा रहा हू। मैं क्यो नही उनसे कह सकता कि किस आधार पर वे अपनी इज्जत को खुशहाल की जिन्दगी से ऊपर मान रही हैं। पति का हृदय-परिवर्तन करने की बात क्या उनके दिमाग मे नही आ सकती थी। लेकिन मुझमे खुशहाल जैसी मसीहाई ताकत कहां है ?

"चादनी अब कहां है, श्रीमती कल्याणी ?"

"मर्दाघर तक पहुच गयी थी। उसके आगे नही दीख पड़ी ? अच्छा ही हुआ। नौकरों और बच्चो ने उसे पत्थर मार-मारकर घर से भगा दिया था। मालिक तो पिस्तौल भरे ही घूम रहे थे।

"कुछ दिन पहले मालिक ही चादनी पर पिस्तौल चला देते तो ठीक था। कुतिया के लिए तो सिर्फ मालिक का कहना ही काफी होता कि पागल हो गयी थी। आदमी के लिए सिर्फ कहना या सोचना काफी नही होता। उसके लिए सबूत इकट्ठा करना होता है।"

"आप क्या कहना चाहते हैं डॉक्टर साहब ?" मालकिन तड़प उठी थी। उनकी आखें आंसुओ से भर गयी थी।

"मैं यह कहना चाहता हूं कि खुशहाल पागल नही था। पागल कौन है, खुशहाल की मौत के लिये जिम्मेवार कौन है, आपसे ज्यादा कौन जानता है ?"

"अच्छा !" श्रीमती कल्याणी बमकी, "आप हैं पानी मे आग लगाने वाले। आपने ही पागल को मसीहा बनाया। दिमाग तो मेरा खराब था कि मैंने उस रोगी को आपके दवाखाने मे भेजा। पागल तो मैं थी कि एक असहाय आदमी पर रहम किया। किस्मत तो मेरी फूट गयी थी कि मैं आज भी धर्म-कर्म मे विश्वास करती हूं। मूर्ख तो मैं थी कि मैंने उस कुतिया को खुद गोली से नही उड़ा दिया। दरअसल मैं भोली-बेवकूफ हूं कि दुनिया के उस हर आदमी को अच्छा मानती हूं। मुझे क्यो मुसीबत से उबारेंगे आप ?"

"आप चाहे तो मैं आपको पागलपन का प्रमाण-पत्र वाकई दे सकता हूं

श्रीमती कल्याणी ?" मैंने बड़े अदब के साथ कहा, "अगर आपको अपनी इज्जत अपनी जिन्दगी से ज्यादा प्यारी है तो इस प्रमाण-पत्र से आपका और आपके पति का सिर ऊंचा हो जायगा, लोग सवाल भी नहीं करेंगे और पुलिस पूछताछ भी नहीं करेगी। लेकिन खुशहाल पागल नहीं था। खुशहाल मसीहा था। आपके परिवार की सलामती के लिए मां शक्ति का भेजा हुआ मसीहा। उसके सन्देश को मैं भी पूरी तरह नहीं समझ सका।"

श्रीमती कल्याणी आंखों से आग बरसाती, छलके हुए पानी की बूंदों की तरह मेरे दवाखाने से बाहर हो गयीं और फिर कभी दिखाई नहीं पड़ीं।

वापसी

☐ सोहन शर्मा

चौबीस घन्टे हो गये थे मुझे खबर मिले पर। मैं अभी तक टालता रहा हूं। साहस ही नही जुटा पाया कि जाऊं और उसे देख आऊं। वैसे कुछेक साथियो से मुझे उसकी खबर मिलती रहती थी। कादर बता रहा था कि उसका सर खुल गया है और वो अभी तक बेहोश है। चौबीस घन्टे की बेहोशी। मार भी तो काफी पड़ी थी। हमलावर शायद चार-पाच थे और गनपत अकेला।

कुछ लोग कह रहे थे—दोष गनपत का ही है। उसे क्या पड़ी थी एक अरसे से चली आ रही व्यवस्था मे दखल देने की। मुकादम पाच रुपये देकर आठ रुपये की रसीद पर दस्तखत करवाता था तो कोई अकेले गनपत से ही नही, सभी मजदूरो से। किसी ने कभी कुछ नही कहा। फिर गनपत ही क्यो अड़ गया—"नही मैं तो आठ रुपये ही लूगा या फिर दस्तखत करूंगा तो पाच रुपये की रसीद पर ही।' कितने तैश मे मुकादम से उलझ बैठा था वो। 'तुम हमारा हक मारना चाहते हो।' झगड़ा तो होना ही था। मुकादम कैसे बर्दाश्त करता इसे। आज गनपत अपने हक की बात करता है...कल दूसरों में भी फैलेगी यह हवा। झगड़े के कुछ घन्टे बाद ही सभी को इस हादसे की खबर हो गयी थी। शाम के झुटपुटे मे लोहे की छड़ों और लाठियो ने गनपत को घेर लिया था। सही जगह दस्तखत करने की जिद पर हाथ-पाव तुड़वा बैठा। यह तो गनीमत थी कि दौड़-धूप करके साथियो ने उसे अस्पताल मे दाखिल करवा दिया था।

एकाध लोगो ने हमलावरो को पहचान लिया था। मुकादम के ही आदमी थे वे सब। पर लोग गवाही देने से कतरा रहे थे। हमलावरो का नाम नही लेना चाहते थे। थाना-पुलिस की भागदौड़ कौन करे। फिर अपनी रोजी छिन जाने का डर भी तो था। हाथ-पाव की सलामती की चिन्ता अलग से। कौन उलझे इन आततायियो से। शहर के खैराती अस्पतालो में भी आजकल जगह नही मिलती।

कादर और एकाध साथी उसे अस्पताल जाकर देख आए थे। मैं तो अब तक उसके लिए भी साहस नहीं जुटा पाया था। डर था कहीं पहचान न लिया जाऊं। मुकादम के आदमी भी तो वहां आसपास होंगे। गनपत के प्रति सहानुभूति रखने वालों पर नजरें गड़ाये। बडी मुश्किल से मुकादम के यहां लिखा-पढ़ी का यह काम मिला है। यह भी छूट गया तो फिर वही बेकारी। फाके और घरवालो के ताने। एक फालतू सामान हो जाने की पीड़ा।

और अब। बडी मुश्किल से चौबीस घन्टों की कशमकश के बाद शायद भीतर कहीं थोड़ी-सी बची आदमियत ने मुझे कोंचा—कि गनपत को देख आना चाहिए। साथ का आदमी है।

आखिरकार इस तरह डर कर कैसे जिन्दा रहा जा सकता है। फिर कादर और दूसरे साथी भी तो है। जो होगा देखा जायेगा। वैसे सच कहूं तो अपने इस फैसले के बाद भी अस्पताल की ओर बढ़ते हुए मेरे कदमो में वो तेजी नही थी। शायद अभी भी मेरा कायर मन पूरी तरह गनपत के साथियो मे गिने जाने के संभावित खतरो की आशंका से ग्रस्त था।

काम से छूट कर बैलार्ड पियर के वालचंद हीराचंद मार्ग में धीरे-धीरे चलता हुआ मैं बड़े डाकखाने के चौराहे पर रुक गया। एक बार सावधानी से इधर उधर देखा। कही कोई परिचित चेहरा तो नही है आसपास। फिर आश्वस्त होकर दाहिनी ओर शहीद भगतसिंह मार्ग पर मुड गया। आगे चन्द कदमो पर ही सेंट जार्ज रोड है। बडे मुख्य मार्गो की अपेक्षा कम चौड़ा, बहुत सूना, उदासी और मनहूसियत के साथ एक दरिद्र जरायमपेशा की सी लाचारी ओढे, हवालात मे पुलिस की मार से लस्त-पस्त किसी संदिग्ध अपराधी की तरह पसरा हुआ था सेंट जार्ज रोड। बोरीबन्दर स्टेशन और बड़े डाकखाने की गहमागहमी के बीच दबा-पिसा।

दायीं तरफ फुटपाथ पर चारखाने की लुंगी और बनियान मे ऊंचे स्टूल पर सबील से कोहनी टिकाये एक मौलाना किसी प्यासे को पानी पिला रहे थे। करबला मे हसन हुसैन की शहादत की याद मे प्यासे को पानी पिलाने के सबाब का संतोष मौलाना के झुर्रियो-भरे चेहरे को बालको की-सी निश्छलता दे रहा था। एक क्षण के लिए बंध-सा गया मैं। इस बस्ती मे इतने निश्छल और भोले चेहरे की मौजूदगी भीतर कही बहुत गहरे तक आश्वस्त कर गयी मुझे कि यही एक आबादी है। अलबत्ता जंगल अपनी पूरी कूवत से आबादी पर हावी होने की कोशिश मे है।

सबील के पास ही उस फुटपाथ पर एक परिवार का डेरा था। टीन के एकाध बक्से, एक चिथड़े-चिथडे रजाई और कपडो की गठरी के बीच बुत की तरह एक औरत। मरद और दो बच्चे पास-पास सटे चुपचाप सूनी आंखो से

सामने बड़े डाकखाने के पिछवाड़े खड़ी उस डाक-वॉन को देख रहे थे। डाक-वाले फुर्ती से डाक के थैले ला-लाकर वॉन मे रखते जा रहे थे। वॉन स्टेशन और एयरपोर्ट जायेगी। थैलों मे पड़े तमाम पते-ठिकाने वाले खत अपने-अपने ठिकानों पर पहुंच जायेंगे। फुटपाथ पर पड़े इस परिवार का पता-ठिकाना क्या है। भेजने वाला और पाने वाला दोनो नदारद। धुरीहीन, टीन के बक्से और चिथड़े-चिथड़े रजाई के साथ बिना पते-ठिकाने के अभिशाप को भोगते मरद-औरत और बुत बने बच्चे। आश्रयहीनता के भय ने बच्चो की आंखों तक मे वीरानी और दहशत भर दी थी। बच्चो तक को डरा देने वाली यह कैसी बस्ती है। मेरी नजरों में इसी शहर की पॉश बस्तियो की इमारतें घूम जाती हैं। जहां परिवार के हर सदस्य के लिए अलग-अलग कमरे हैं। नौकरों के कमरे अलग है। कुत्ते-बिल्लियो तक के लिए अलग और खास कमरे है। इन बुत बने चेहरो के हाड़-मास को चूसकर जोक की तरह फूली हुई वो आलीशान इमारतें और उनमे रहने वाले बन्द गोश्तखोर होंठ। गोश्तखोर होंठों को ही इस बस्ती में मुस्कराने का हक हासिल है।

मुस्कराने के सहज मानवीय अधिकारों को किसी तार्किक आधार से जोडने की मेरी कोशिश को अचानक सामने की फुटपाथ से उठने वाले एक सामूहिक अट्टहास ने तोड दिया।

सामने फुटपाथ पर आठ-दस लोग गोल बाधे बैठे थे। गोल के बीच ताश के पत्ते, कुछ नोट और चन्द सिक्के बिखरे हुए थे'''खरखराती आवाज में एक लम्बूतरा चेहरा'''और बोलो'''तीन इक्का हमारे पास है'''' 'तीन इक्के के सामने उस्ताद हम क्या बोलेगा'''। हारी हुई आवाज की दयनीयता विजेता के अट्टहास मे खो गयी'''जीतने वाले ने पास ही रखी अद्धे की बोतल उठाई और गट-गट कर खाली कर गया''''साला हम पहले ही बोला था'''तीन इक्के के सामने नहीं आना'''हम तीन इक्का है''''

जुआरियो के इस गोल के पास ही बूटपालिश वाले कुछ लड़के बीडी का कश लगाते हुए बड़ी तन्मयता से इनका खेल देख रहे थे। कुछ ही दूर एक पुलिसवाला खोमचेवाले को डांट रहा था, 'ए उधर चलो। बाजू में लगाओ। म्युनिसिपेल्टी का जगह है।' पास से जाता हुआ एक ठेलेवाला ऊंची आवाज में गा रहा था''''इन्साफ की डगर पे बच्चों दिखाओ चल के'''ये देश है तुम्हारा''''

अपनी धुन मे चलता हुआ मैं अचानक ठोकर खाते-खाते बचा। फुटपाथ के जोड खुल गये थे'''सीमेंट के दांते निकले हुए थे। फटी बिवाई-सा फुटपाथ का खड्डा गहरा तो नही था पर डगर पर ठोकर खाकर गिरने के लिए काफी था। मैंने डरते-डरते पाव उठाया, चप्पल की नाक सलामत थी।

मैंने चाल थोड़ी तेज की। इस मोड़ के बाद ही अस्पताल का फाटक है।

मोड़ से सटे फुटपाथ के जंगले से बड़े डाकखाने की कैंटीन का किचन दिख रहा था। कैंटीन के पिछवाड़े वाले पेड के नीचे जूठन का ढेर छितरा हुआ था। पास ही जगले से सटकर एक मजदूर औरत सोई पड़ी थी। नींद मे बेसुध। औरत के कपड़े अस्तव्यस्त थे। तार-तार ब्लाउज में से एक स्तन बाहर लटक रहा था। और उसका छोटा-सा दो-ढाई साल का बच्चा थकी हुई बेसुध मा के स्तन से चिपटा हुआ था। कुछ दूर जूठन मे लिपटी हुई हड्डियो को लेकर कुछ कुत्ते खीचातानी मे लगे हुए थे। इन कुत्तो से बचता हुआ एक बूढ़ा जूठन के ढेर मे से बीन-बीनकर कुछ खा रहा था। बीच-बीच मे सहम कर इन कुत्तों को ओर भी देख लेता। इन सबसे निर्लिप्त कुछ ही दूरी पर छाया मे बैठा एक तोंदियल मालिश वाले को डाट रहा था—'अबे जोर से हाथ चला, मालिश ऐसी होनी चाहिए कि तबीयत मस्त हो जाय। जोर लगा जरा··· खाना नही मिलता क्या ?'

मोड खत्म हो रहा था। सामने कुछ ही दूरी पर अस्पताल का बडा-सा फाटक दिख रहा था। फाटक के इधर दायीं ओर फुटपाथ पर लकडी की छतो-दीवारो वाले कुछ खोके थे कतार मे। कुछ पेशेवर टाइपिस्ट बैठे हुए थे इन खोको मे। इक्का-दुक्का ग्राहक सामने रखे स्टूलो पर बैठे बीड़ी फूक रहे थे।

खोको की दीवारो पर सिनेमा के एकाध इश्तहारो और विराट मोरचो के पोस्टरो के साथ 'इग्रेजी' और 'हिन्दी मे टाइप करके मिलेगा' के बोर्ड लगे हुए थे। टाइप करवाने वालों के चेहरो से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता था कि इनमे से अधिकतर बेरोजगार चेहरे है जिन्हे अखबारो के 'वान्टेड कालम' देखने, नौकरी के लिए आवेदन-पत्र भिजवाने और सिफारिश जुटाने की दौडधूप करने के अलावा इन दिनों और कोई काम नही है। इनमे से बहुतो को तो आवेदन-पत्र का मसौदा तक रट गया होगा···विथ रेफरेन्स टू योर एडवर्टाइज़···से लेकर 'योर्स फेथफुली' तक। फेथफुलनेस। निष्ठा!! क्या पता इनमे से कितने होंगे जो नौकरी पा लेने के बाद भी गनपत की तरह सही जगह पर दस्तखत करने की निष्ठा कायम रख सकेंगे।

अस्पताल का फाटक सामने था। किसी तरह अटपटे पांव और डरते मन से फाटक मे दाखिल हुआ। फाटक के एक ओर सूखी हुई मोमबत्तियाँ लिए एक छाबड़ीवाला और उससे भावताव करती मुचडे हुए कुर्ते-पाजामें में दुबली-पतली सी काया। हाथ मे हल्दी, तेल से चिकट-चिकट एक थैली। अपने को मुन-बियों मे भरकर एक पीले बीमार चेहरे पर अपनापे की चमक देख सकने की कितनी लालसा है इस थैली मे। बीच मे है जेब की रेजगारी और तनख्वाह मिलने की तारीख तक का फासला।

मैंने जेब टटोली। रेजगारी की खनखनाहट···कल सुबह नाश्ते और

दोपहर के खाने पर होटलवाले की आवाज में खो गयी। पच्चीस पैसे का नाश्ता'''पाव भजिया। खाना पच्चहत्तर पैसे का—एक दाल और तीन रोटी '''सूखी हुई मौसम्बी साठ पैसे। कुछ बहाना बना दूंगा'''कुछ फ्रूट-ब्रूट लाने का मन था, पर सोचा पता नहीं डॉक्टर ने किस-किस चीज के लिए मना किया हो। अच्छा बहाना है। अच्छा! सब कुछ खाने को कहा है ''अगली बार आऊंगा तो एक बड़ा-सा नारियल, पानी वाला और कुछ सेब लेता आऊंगा'''तुम जल्दी अच्छे हो जाओ। बड़ी मर्दानगी का काम किया है। दर-असल इन मुकादमों का हौसला भी इसीलिए बढ़ा है। कोई विरोध तो करता नहीं। मगर तुमने यार गनपत हिम्मत खूब की। भरोसा रखो। हम सब तुम्हारे साथ हैं।

मैंने हथेलियों से गनपत के ललाट को छूते हुए अपना यकीन पहुंचाना चाहा उस तक। गनपत के चेहरे पर एक फीकी-सी मुस्कान थी और आंखों में असमंजस। उसने कसकर थाम लिया मेरी हथेलियों को। तसला ढोने वाले उसके खुरदरे हाथ मानो यकीन कर लेना चाहते थे कि साथ रहने वाले 'हम सब' में मुझसा सफेदपोश भी शामिल है।

उसके हाथों की गरमाहट ने मुझे बल दिया। लगा कि भीतर का डर धीरे-धीरे कम हो रहा है।

गनपत कह रहा था—'हिम्मत करने जैसी कोई बात नहीं थी भइये! सीधी-सी बात है, पांच रुपये लेकर, पांच रुपये की रसीद पर ही दसखत करने चाहिए। आठ रुपये जब नहीं मिले तो आठ रुपये की रसीद पर दसखत क्यों?' मुझे लगा वार्ड के बाहर गलियारे में चटाई पर लेटे हुए गनपत के कमजोर चेहरे पर जो दृढ़ता है वह मेरे पढ़े-लिखे मन की कायरता को हिकारत से देख रही है।

'सही बात है' मैं एक घिसे-पिटे वाक्य को बार-बार दोहरा रहा था''' सही बात है'''सही बात है'''। सही बात यह थी कि मैं मुकादम के गुस्सैल चेहरे और गनपत की मुस्कान के अपनापे के बीच कहीं था। दोनों को एक-साथ निभाना चाहता था, कितना मुश्किल था यह!

'सिस्टर!' पास से गुजरती एक सफेद पोशाक को टोका मैंने—'कुछ सीरीयस बात तो नहीं है न।'

'भेजे में चोट लगा है। बाकी कुछ सीरीयस नहीं है। ब्लड देना पड़ेगा। तुम क्या इसका रिलेटिव है? ब्लड देगा क्या?

'ब्लड'। शायद मैं घबरा गया था। खून मेरे बदन में ही कहां है। 'घब-राता क्यों है मैन! इधर अस्पताल में सब बन्दोबस्त है। ये अच्छा हो जायेगा।' नर्स मुझे आश्वस्त करते हुए आगे बढ़ गयी।

गनपत से मिलकर अस्पताल के फाटक से जब बाहर आया तो बड़ा हल्का-हल्का लग रहा था। डर कम हो गया था। चोटें गहरी थी पर जोखम की कोई बात नही थी। अस्पताल के माहौल में पसरी हुई दवाओं की गंध और दिलासा चाहते-देते चेहरों के बीच से निकल कर बाहर की खुली हवा को फेफड़ो में भरने के लिए एक जोर की सांस ली मैंने! मैं खुश था कि गनपत ठीक हो जायेगा और जल्दी ही लौट आयेगा। हमारे बीच।

सलीब पर

☐ संतोष रमेश

धीमी आंच में पकती सब्जी की खुशबू को भरपूर सूंघते हुए सोचा, अभी इसे गलने में समय लगेगा, जब तक नहा लिया जाये। बाथरूम में पहुंच कर लिक्विड साबुन के डिस्पेन्सर की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि फोन की घंटी बज उठी। कौन होगा इस वक्त ? कभी-कभी बेकार ही लोग परेशान कर देते हैं, जिनके पास कोई काम नहीं होता, उन्हें कुछ और नहीं सूझता सिवा इसके कि इस तरह थोड़ा बहुत वक्त फोन पर ही बिता दें। गुस्से में मैं तौलिया लपेटे ही बाहर निकल आयी।

"हैलो, मैं मिसेज माथुर बोल रही हूं।"

"कान जूही ? मुझे पहचाना ?···ऊ···अरे भई, हम हैं अमिता···। ···तुम्हारी मीता।"

"मीता !! तुम !"

मेरे हाथ में रिसीवर कांप गया। यकीन ही नहीं हुआ कि ये गंभीर उदास आवाज अमिता की है। मेरी मीता की। जो अट्ठारह बरस पहले मुझसे बिछुड़ गयी थी।

"मैं यहां एक जरूरी मीटिंग के सिलसिले में आयी हूं। अशोका होटल रूम नं० एक सौ आठ। आज दोपहर के कुछ घंटे फ्री हैं मेरे, तुम आ सकोगी ?"

और मैं खुशी में भरकर कांपती आवाज में इस तरह बोलने लगी जैसे प्रार्थना कर रही हूं, जैसे अगर हाथ मजबूत न रहे तो रिसीवर पैरों पर गिर जायेगा और मैं इसी रूप में भागी-भागी उनके···

रिसीवर रखते हुए लगा जैसे मीता मेरे कानों के पास आकर फुसफुसा रही है—'चलना है जूही, एक जगह।' मेरा वही आश्चर्य-भरा प्रश्न—'कहां ?' 'हर बात में कहां ? कहां ? बस चलो।' और मैं चल नहीं रही हूं ···मीता के पैर मेरे पैरों में समाकर भाग रहे हैं। ओह, कितना अतीत हम

पीछे छोड़ आये, कितनी लबालब यादें'''सुख-दुख, कहकहे और चीखें।

मेरे घर के सारे कमरों में बन्द-बन्द सी खुशबू भर गयी। नहा लिया, खाना भी बन गया। लेकिन यह बन्द खुशबू'''अन्तहीन सन्नाटा जैसे घड़ी की लगातार टिक्-टिक् के साथ मेरे चारों ओर रिसता जा रहा है और मैं प्रतीक्षा कर रही हूं'''कुछ समय बाद मीता से मिलन की'''

और इस तरह, मानो पुराने दिन लौट आये हों, पहले की तरह, यों महसूस करती मैं होटल पहुंची। नरम गुदगुदी दूब के लॉन को पार कर वह छोटा-सा पोर्टिको सरीखा हिस्सा चलकर पहुंची तो कदम एकबारगी ठिठक गये। अब इतने सालों बाद पहचान का वह कौन-सा सिरा होगा जिसे पकड़कर मैं बातें दोहराऊंगी, या नयी बातों का परिचय दूंगी, शीशे के विशाल दरवाजे को ठेलकर अंदर काउंटर पर मैंने उनके कमरे का रास्ता पूछा। जहां से सीढ़ियां शुरू होती है'''उस बड़े चौकोर हॉल के गलीचे पर चलते हुए नजरें एकाएक शीशे के पार्टीशन पर रुक गयी, जिसके उस पार डाइनिंग हॉल था और जिस पर आदमकद पेंटिंग्ज खूबसूरती से की गई थी। हॉल में सोफों की फैली गोलाई के एक सिरे पर एक अधेड़ महिला बैठी किसी पत्रिका के पन्ने पलट रही थी। चेहरा उनका काफी झुका हुआ था जिससे बालों में सफेद मोटे से तार जैसा बिछा जाल, कहीं इक्का-दुक्का काले बाल समेटे हुए स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

"सुनिये, क्या ऊपर जाने का रास्ता इन्हीं सीढ़ियों से है।"

सुनकर उन्होंने झटके से सिर उठाया, पल भर चश्मे में से मुझे देखा और बेतहाशा खुश होकर कहने लगी—"अरे जूही, तुम इतनी बड़ी हो गयी पर चेहरा वही—एकदम वही का वही।" और उन्होंने अपने अंक में मुझे समेट लिया। मेरी आंखें भर आईं। उनसे मिलने की खुशी में, या उनके ढले, शिथिल, उदास और बुढ़ापे की हल्की परत ओढ़े हुए चेहरे को देखकर''' आह, कितना निखरा, जवान, प्यारा रूप था इनका मेरे जहन में, यह क्या हालत हुई इनकी ?

"चलो, ऊपर चलते हैं।" उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर सीढ़ियां चढ़नी शुरू कर दी। उनके पैरों में भी अब वह चंचलता, फुर्ती नहीं रही थी।

कमरे के अंदर पलंग पर बैठते हुए मैंने एक सिरे से कमरा देख डाला। जहां सब आराम थे लेकिन कुछ भी उनका अपना नहीं था। अभी बिल चुकाया, होटल से बाहर हुए कि सब चीजों से नाता खत्म। बायीं ओर टेबिल पर ऐश-ट्रे में जली सिगरेट के बचे टुकड़ों का ढेर और व्हिस्की की आधी बोतल तथा ग्लास रखे हुए थे।

"क्या आपके साथ और भी कोई है ?"

"आप नहीं तुम'''जैसा पहले कहती थी. और मैं भी उतनी ही तनहा और अकेली हूं सदा से।"

फिर टेबिल पर मेरी नजरों का सवाल देख मुस्कुरा दी—"अच्छा, ये चीजें देखकर पूछ रही हो शायद, इन्हें मैं खुद इस्तेमाल करती हूं।"

मैं चौंकू इसके पहले ही उन्होने बैरे को बुलाया और कॉफी के साथ वेफर्स का ऑर्डर दे दिया। फिर पलंग पर टिक कर बैठ गयी और गौर से मुझे देखने लगी। उन्हीं काले घेरों के दायरे मे सिमटी बडी-बडी पलकों वाली आँखें, वक्त मे पिसा उदास चेहरा और बेहद दुबला पीला शरीर मैं सहन नही कर पायी। उनकी सवालिया आंखे जैसे बताना चाह रही हों'''वह आत्मा को पोर-पोर भिगोता लेकिन दहशत से भरा मेरा अतीत याद रखने की चीज नही है। मैं पारे की तरह घुल चुकी हू, समय के साथ' और घबराकर मैंने नजरें फेर ली।

"जूही, जो अच्छी तरह दूसरो को जिन्दा नहीं रहने देना चाहते, उन्हें बहाना चाहिए जिसे दूसरो पर लाद कर वे सहज समान रूप से जियें, और मैंने वो बहाना उन्हे दिया।"

अधे, विराट् विस्तार से गूंज-सी बहकती उनकी आवाज। मैं समझ गयी, इशारा मौसी की ओर है, पक्षाघात से लूज हुए मौसाजी की ओर'''विधवा भाभी की ओर।

मैंने वह सब किया जो आम लड़किया नही करतीं। जानती हो जूही, जब हम लुक-छिपकर अमरूद के बगीचे जाया करते थे, शारदा माँ के मदिर जाया करते थे तब मेरी उम्र क्या थी? मै चौबीस बरस की थी और अब अठारह बरस हो गये उस बात को। हा, मैंने शराब की लत डाली, धुए का नशा किया। पुरुषों को मित्र बनाया और'''और मुक्तभोग भी किया'''कभी सहमति से। कभी मजबूर होकर। जिससे अम्मा, बाबूजी, भाभी किसी को मलाल न रहे कि एक अच्छी लडकी उनके कारण तबाह हो गयी। मैं कितनी बुरी हू जूही, मानती हो न इस बात को?"

टीस चुभोते मीता के शब्द मेरे जहन में आरे की तरह चलने लगे, जिसकी तीखी धार तले मेरा आदर्श-भरा निर्दोष, सुखी जीवन चरमरा उठा और मैं अंदर-ही-अंदर छटपटा उठी। सूखी रेत में पड़ी मछली की तरह।

"तुमसे आखिरी बार तब मिली थी जब मेरा तबादला सागर हुआ था। उस तबादले का भी एक कारण था। नौकरी मे मेरे ओहदे को ऊँची-नीची श्रेणी देने वाले मेरे अफसर मुझसे मेरा शरीर चाहते थे और जब मैंने ८० किया तो उन्होंने मेरा तबादला सागर कर दिया। सागर में भी वही ..

भूखी नजरें। तीन महीने तक लगातार अपने विवेक से लड़कर मैंने तय किया कि अगर ऊंचा ओहदा पाना है और ढंग से जीना है तो इन भेड़ियों के आगे ···और जूही, अपने झिझोड़े हुए शरीर को ढोते हुए ग्लानि और पाप से मैं कितनी बार मर-मरकर जिन्दा हुई···कोई नहीं जानता···फिर याद आये अम्मा के वे आंसू। यह चाह कि अमिता जैसी अच्छी लड़की बरबाद हुई जा रही है हमारे पीछे। तब मैंने उन्हें बहाना दिया। नशा करके और धुआं पीकर। रात को बहकती हुई जब घर पहुंचती थी तो ऐन बाबूजी के सिरहाने से अम्मा बाह पकडकर खींच ले जाती थी—"वहां नहीं मीता, यहां···यहां बैठो। यहां बैठकर बास उड़ाओ शराब की। बाप लकवे में पड़ा है और तुम···तुम्हें शरम नहीं आती मीता ? हे भगवान, इससे तो बांझ ही रहती मैं। कम-से-कम ये दिन तो नहीं देखना पडता।" तब हंसी आती थी···"बास तुम्हें सिर्फ शराब की आती है अम्मा, अमिता के जलते अरमानों की नहीं। धुआं पहनी जिन्दगी की घुटती, कांपती परछाइँ नजर नहीं आती तुम्हें ?' जूही, आहिस्ता, आहिस्ता मैं, मैं नहीं रही। आज तक इस अपनी लाश का वजन ढोते-ढोते मैं खुद लुज-पुज हो गयी। बाबूजी की तरह। बाबूजी नहीं रहे तो कोई तो घर मे हो जिसके शरीर का हर अंग लकवे से पीड़ित हो।

उनका स्वर इतना सहज, इतना स्थिर और शान्त था कि बड़ी देर तक लगा ही नहीं कि मीता अंदर-ही-अंदर सुलग भी रही है। निःशब्द और अन-देखा। बाबूजी नहीं रहे इस बात को कितनी सहजता से उन्होंने स्वीकार लिया। मेरे सामने यह जो भुरभुरायी मिट्टी का खंडहर बैठा है, दर्द और टूटन का लहराता समंदर, अब इनके दर्द को किसी की स्वीकृति की जरूरत नहीं है।

बैरा कॉफी, नाश्ता रख गया। वहां रखे थर्मस मे ताजा पानी भर गया और पूछने लगा कि क्या हमें बर्फ की जरूरत है। "नहीं।" मीता उसके जाते ही हंसने लगी—"यह बेवकूफ समझता है कि मैं हर बार इसे सिर्फ बर्फ के लिये ही आवाज देती हूं।"

उनकी आवाज पुन. भारी और गंभीर हो गयी—"जूही, आज मैं जहां हूं··· जिस भी हालत मे हूं···जानती हो ? बड़ी ऑनरेबिल पोस्ट है···मैं चलती हूं तो लोग आदर देते खड़े हो जाते हैं, हर ओर अभिवादन करते जुड़े हाथ···शोर-शराबे में भी मेरी उपस्थिति से खामोशी का सहमा हुआ आलम, इतनी इज्जत ···और रात···ओह, रात की जवान बिछावन पर मेरा टूटा शरीर अपने हादसे में हंस भी नहीं सकता, रो भी नहीं सकता।"

"मैं भी कितनी पागल हूं जूही। देखो, अपने गमों में याद ही नहीं रहता कि दूसरों की खुशी पूछ लूं। तुम कैसी हो ? तुम्हारा वैवाहिक जीवन ?"

"मैं···मीता···मैंने।"

"हां, इसी होटल मे डायरेक्टरी देखते हुए अचानक तुम्हारे पति का नाम लिखा मिला। सोचा फोन करूं। हो सकता है ये तुम्हारे ही पति हों।"

"वे ग्लास फैक्टरी के मैनेजर है। हमारे एक बेबी भी है।" मैंने शरमाते हुए कहा तो वे उत्साह मे भरकर खिल उठीं—"सच, लायीं क्यों नही?"

थोड़ी देर चुप रही। उनके चेहरे के उतार-चढ़ाव और कांपते रंगों को देखने की मुझमें हिम्मत नही थी। मैं खिडकी से बाहर, उस पर लगे चॉकलेटी परदे के उठे हुए कोने से सडक का हिस्सा देख रही थी। "जूही, जो कुछ तुममे कहा वो दिल पर जमा इतने सालों का बोझ था। जो अब थोड़ा हलका हुआ, लेकिन तुम सोचना नही। यह शरीर दूर से सोने जैसा चमकता है लेकिन होता खालिस पीतल का है···एक बार दुरुपयोग हुआ कि फिर कोई मालच नहीं रहता उसे बचाकर रखने का।"

"मीता···इतना सहोगी तुम। मैंने सोचा भी नही था।" कहते हुए मेरी आवाज मानो डूब-सी गयी। इच्छा हुई अभी इसी वक्त मीता को जिन्दा मारने वाले लोगों की बोटियां काटकर कुत्तों को खिला दूं।

"तुम बड़ी खुशकिस्मत हो जूही।" उनके कंठ का रुंधा, भीगा स्वर मेरी नाडियों मे उफनाये खून-सा तरंगें लेने लगा। कितना बडा, गांठों से भरा, चुभता जीवन है उनका जो न कभी खुलने का नाम लेता है और न बंद होने का।

"मेरी मीटिंग एक घंटे बाद है। पहुंचने मे वक्त लगेगा और रात को मैं चली जाऊंगी।"

"इतनी जल्दी!···मेरा घर नही देखेंगी?"

"देख लिया। तुम्हारी चमकती आंखों का यह खुश-खुश प्रतिबिम्ब देखा। घर नहीं देखा क्या मैंने? सुखी सम्पन्न तुम। एक साथ पत्नी भी···मां भी।"

मैं अप्रतिभ हो उठी। उनके कहने से नहीं···बल्कि उस कराह से जो मेरे लिये इतना कहते हुए ऊपर से प्रसन्न···हंसती···मुस्कुराती रहीं लेकिन भीतर ही भीतर···जैसे खंडहरों पर उदास, पंखनुची चील बैठी हो। वे तैयार होती रहीं और मैं जाने क्या-क्या कहती रही···बकवास करती रही, इतना ध्यान ही नही रहा कि पूछूं 'क्या तुम अभी भी सागर मे हो या कहीं और।"

न पूछने की अपनी इस नालायकी पर मुझे रह-रहकर ताव आता रहा। अब वे ट्रेन में होंगी। बेबी जिद कर रही है कि मैं बताऊं, मैं कहां गयी थी, 'गयी थी, एक लाश देखने। जिसके हर लम्हा चुप निर्दयी मौत में मैं भी मरने-मरने को हुई जा रही हूं। मानो कचोटती हुई टीस के खामोश दायरों मे

मैं एक जलती लकडी समेट लाई हूं। अब"'उसकी आंच से मेरा यौवन झुलस कर वहां"'उस बड़े आंगन वाले घर में"'जहां बालों की दो चोटियां करके मैं सारे दिन फुदकती फिरती थी।

छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरे, थोड़ी ऊंचाई पर बने उन इक्का-दुक्का मकानों मे एक घर हमारा था और एक मीता का। छोटे पतले होठो वाला उनका आकर्षक गोल चेहरा, इकहरा बदन और इस कदर मुलायम सुनहले बाल कि मैंने आज तक वैसे खूबसूरत बाल नहीं देखे। उनकी पढाई का वो आखिरी साल था और उन्ही दिनों मौसाजी को पक्षाघात हुआ।

मौसी कभी दु.ख से कातर हो मां से कहतीं—"क्या करें एक लड़का था, वह भी हमें दगा दे गया। मीता के बाबूजी तो हाथ-पैर से ही लाचार हो गये। करवट तक के लिये दूसरों का सहारा लेते हैं। बस एक यही मीता का आसरा है हमे। किसी तरह एम.ए. हो जाये तो कुछ सहारा हो।"

यही वाक्य पहले वे दूसरे ढंग से कहा करती थी कि 'यह साल निकल जाये तो मैं मीता के हाथ पीले कर ही दूगी।'

ठंडी कंटीली हवा बदन का रोयां-रोयां कंपा रही थी। मैं जल्दी से जल्दी घर पहुचने की फिराक मे थी कि देखा मीता एक अजनबी लड़के के साथ बातों मे मशगूल मुझसे कुछ ही दूरी पर चली जा रही है। मेरे पुकारने पर वे चौंककर पलटी—"अरे जूही, तुम! इनसे मिलो ये मिस्टर खन्ना हैं।"

अभिवादन में मेरे हाथ जुड़ गये। क्षण भर में ही दोनों के सम्बन्धो की गंध मेरे आसपास मडराने लगी।

"जूही, इस मुलाकात को अपने तक ही सीमित रखना।"

उनका कापता, झिझकता अनुरोध उस क्षुब्ध शाम में मेरे सीने मे कसमसा उठा।

जनवरी की एक सुबह, फीकी धुप में लिपटे रजनीगंधा के पेडों के पत्तो मे से नरम धूप छन-छनकर आंगन मे आ रही थी। मैं धूप मे बैठी पढ रही थी कि मौसी आयीं। हाथ मे पूजा की थाली थी—"मदिर गयी थी मन्नत मागने कि मीता के बाबूजी को भगवान अच्छा कर दे और मेरी फूल-सी बच्ची इसी फागुन मे ब्याह दी जाये।"

फिर बड़ी आस्था से उन्होंने सबको प्रसाद बांटा। शाम को मैंने मीता से चुटकी ली—"अब तो तुम्हारा ब्याह होगा मीता।"

वे सहसा उदास हो गईं—"इतने बड़े घर का बोझ धीरे-धीरे मेरे कंधों पर सरक रहा है जूही, ब्याह क्या होगा? फिर भी मैं अम्मा से सब कुछ साफ-साफ कह दूगी। मुझे विश्वास है कि वे मान जायेंगी।" लेकिन मीता के विश्वास को मौसी ने एक ही तीली से आंच दिखा दी। तैश में आकर वे

चिल्ला पड़ीं—"तो तू परजात में ब्याह करेगी। कुल का नाम डुबायेगी ?"

और फिर वह वहीं बैठकर रोने लगी—"हमारी किस्मत ही खराब है। बेटा चल दिया, इनका यह हाल है, बहू ऐसी कि न करनी की न···तुम क्यों बचो, तुम भी निकलो इन्ही की तरह।"

मीता चुपचाप सुनती रही। फिर तड़प कर उठीं—"ठीक है अम्मा, तुम नही चाहोगी तो ब्याह नही होगा।" और फौरन ही मुह फेरकर चल दी। उस क्षण मुझे उनकी आँखें, चेहरा, माथा ईश्वरीय आलोक से घिरा नजर आया। मुझे लगा जैसे एक और मसीहा सूली पर चढा। लेकिन मीता का चढ़ना कोई देख नही पायेगा सिवा मेरे।

दायित्व

☐ विजय कुमार

प्लेटफार्म का पुल उतर कर तांगे मे बैठ चुका हूं पर घर जाने की हिम्मत नही हो रही है। अपने आपको पूरी तरह टूटा हुआ महसूस कर रहा हूं। रास्ते भर मुन्नी के बारे मे सोचता आया हूं, पर लगता है अब दिमाग ने काम करना ही बन्द कर दिया है। नसो मे एक अजीब-सी थकान फैलती चली आयी है। मैं बुरी तरह परास्त हो गया हूं। बाबूजी को शायद शुरू से ही विश्वास रहा है कि मैं इस बार भी मुह लटकाये हुए आऊंगा और अब वे अधीरता से मेरी प्रतीक्षा कर रहे होगे। पहुंचने पर शायद मन ही मन अपनी सफलता पर खुश भी हो कि उनका इस तरह सोचना बिल्कुल ठीक निकला। बराबर यही सोचकर मैं स्वयं मे सिमटा जा रहा हू कि तीन दिन पहले जिस तेजी से वहां से आया था। अब जब पूरी तरह परास्त होकर उनके सामने पहुचूगा, कैसा दीख पड़ूंगा, गिनती करूं तो दो वर्ष मे मेरा दसवां या बारहवा चक्कर है, जब मैं इसी तरह मुह लटकाये लौट रहा हू। शायद यह अन्तिम चक्कर भी है। इसके बाद सब कुछ निश्चित हो जायेगा। मुन्नी का रिश्ता उसी आगरे वाले लड़के से तय हो जायेगा। इस रिश्ते से मुन्नी को बचाने के लिए मैंने आखिरी बार हाथ-पाव फेंके थे, और जानता हू कि अब सब कुछ स्वीकार कर लेना होगा।

दो वर्ष से कुछ ऊपर ही हो गया है, मुन्नी को बी. ए. किये। इतने समय मे मैंने कम से कम बीस-एक लड़के देख डाले है, पर बात न कही जमनी थी, और न कही जमी।

कही पर उन लोगो को मुन्नी के साधारण नाक-नक्श पसन्द नही आये, तो कही उन लोगो को घर ऊंचा चाहिए था। बहुत-सी जगह बात इसलिए आगे नही बढ सकी कि हमारे रहने-सहने का ढंग नया नही है—मुन्नी उनके घर मे मैच नही करेगी; पूरी तरह अनफिट रहेगी। दस हजार से ज्यादा लगाने मे समर्थ नही हैं और अधिकाश जगह बात यही आकर रुक गयी है।

दो-एक जगह बात कुछ जम भी रही थी तो पाया कि लड़का अभी चार-पांच साल शादी करने के पक्ष में नहीं है।

बाबूजी ने इसी बीच पाच-छः जगह लडके देख लिये थे पर मैंने हर बार उनका तगड़ा विरोध किया था। बाबूजी के दिमाग में बस एक मदद वर ढूंढने की बात रहती है। फिर चाहे लड़का मिडिल पास कर बुजुर्गों का धन्धा सभाल रहा हो. चाहे तमाम नये तौर-तरीकों से पूरी तरह अनजान निपट गंवार हो।

बाबूजी का धैर्य अब पूरी तरह टूट गया है और उन्होंने तमाम मुश्किलों और भाग-दौड़ के लिए मुझे दोषी ठहराना शुरू कर दिया है। मैं भी कई बार हताश हो गया था पर एक चीज थी जो इस तमाम भाग-दौड़ और हाय-तौबा के लिए मुझे निरन्तर प्रेरित करती रही। शुरू से मैं यह सोचता आया था कि जिस दिन भी मैंने हथियार डाले नहीं कि उसके अगले ही कुछ दिनों में मुन्नी का रिश्ता किसी लाला टाइप अधेड़ उम्र के उजड्ड आदमी से हो जायेगा।

बाबूजी महीना भर पहले आगरा में एक लडका देखकर आये है। लडका मिडिल पास है और अपने बाप-दादों का पनपाया हुआ आढ़त का धन्धा संभाल रहा है। वहां से वे काफी सन्तुष्ट होकर आये थे। जब-जब उन्होंने उस रिश्ते की बात चलाने की कोशिश की, मैं उन्हें रोकता रहा। परसों जब वे बात पक्की करने के लिए आगरे एक पत्र लिखने लगे तो मैंने उनका जोरदार विरोध किया। 'आप बस अपनी जिम्मेदारी जल्दी-से-जल्दी सिर से उतार फेंकना चाहते है। उसके बाद आपको इस बात की कतई चिन्ता नहीं रहेगी कि मुन्नी उस लड़के के साथ सुखी भी है या नहीं।' मैं आवेश में चीखा था।

बाबूजी चुप थे। वे एकटक मेरी ओर देख रहे थे। उन्हें चुप देख एक झुंझलाहट, जो बहुत दिनों से मेरे भीतर दबी हुई थी, अचानक मेरी नस-नस में व्याप्त हो आयी। मैं भीतर से पूरी तरह उबल पड़ा था, 'एक अपढ़ देहाती के साथ आप बी. ए. फर्स्ट क्लास पास लड़की को बाध रहे हैं। कभी आपने मुन्नी के भविष्य के बारे में भी सोचा है? दिखता है, आप उसकी भी यही हालत बनाकर छोड़ेंगे जो जीजी की हुई है···यह सब आपके कारण हुआ है··· सिर्फ आपके कारण।'

बाबूजी के लिए यह अप्रत्याशित था।

'यह तुम बोल रहे हो?' वे कुछ क्षणों तक स्तब्ध और अवाक मुझे देखते रहे। धीरे-धीरे एक आवेश-सा उन पर छाता गया, 'तो तू ढूंढ क्यों नहीं लाया अब तक? मैंने छूट देने में कोई कसर रख छोड़ी है···कब तक? आखिर कब तक

बिठाये रखना है जवान बहन-बेटी को घर में'''? चार साल हो गये दौड़ते-भागते, मैं पूछता हूं अभी और कितने साल दौड़ना-भागना है?' वे क्रोध में कांपने लगे थे।

बाबूजी फिर उबल पड़े, 'तेरे भरोसे रख छोड़ी तो हो चुके उसके हाथ पीले। मैंने पहले ही मना किया था कि मत पढ़ा उसे ज्यादा, फिर ढंग का लड़का मिलना मुश्किल हो जायेगा पर साहबजादे अपने आगे किसी की सुनें तब न। बड़ी होशियारी से बोलते थे—'नहीं हम तो बहन को बी. ए. करायेंगे, कल्चर सिखायेंगे, तौर-तरीके ऊंचे करेंगे''') अब और करो ऊंचा तौर-तरीका'''और भोगो कल्चर'''।'

चिड़चिड़ाहट ने बाबूजी के लहजे में एक नाटकीयता भर दी थी। मैंने स्पष्ट देखा, निराशा की गहरी छाया उनकी बूढ़ी आँखों में खिंच आयी थी। क्रोध में उनका झुर्रियोंदार चेहरा और अधिक विकृत हो गया था।

मुन्नी किवाड़ के पीछे खड़ी शायद सब सुन रही थी। मेरे उस तरफ देखते ही वह सरककर भीतर हो गयी।

मैं लगभग तीन-चार दिन बाद पूना में एक लड़का देखने जाने वाला था। लड़के का पता दूर के रिश्ते में होने वाले मौसा जी ने दिया था। वे उसे खूब अच्छी तरह जानते थे। पुराना सम्पर्क था उससे, उन लोगों के घर से।

लड़का बी एस-सी. पास था और पूना की एक फ़र्म में अभी-अभी लगा था। मैंने उसी दिन उसे देखने जाने का कार्यक्रम बना लिया। शाम को दौड़कर मौसा जी के घर गया। वहां उन्हें सारा मामला समझाया। उन्होंने लड़के के नाम एक चिट्ठी लिखकर दे दी। रात के पैसेंजर से मैंने पूना जाने का निश्चय कर लिया। बाबूजी ने आवेश में आकर आगरे के लिए लिखी वह चिट्ठी तो फाड़ दी, पर मेरे घर से रवाना होते समय लगभग चुनौती-सी देते हुए कहा था, 'इस बार तुम्हारा काम नहीं बना तो यह आगरे वाला रिश्ता बिल्कुल पक्का कर लूंगा। मैं अब और ज्यादा रुक नहीं सकता।'

मैंने महसूस किया, उनके एक-एक शब्द में कड़ुवाहट से भरी हुई एक दृढ़ता थी।

पूना जाकर पता चला कि लड़के के मां-बाप देवलाली में रहते हैं। लड़का स्वस्थ; सुन्दर और व्यवहारकुशल है पर रिश्ते के बारे में उसने किसी भी प्रकार की अपनी सहमति-असहमति प्रकट नहीं की। वहां से मुझे देवलाली जाना पड़ा। मुन्नी का फोटो लड़के के मां-बाप को पसंद तो आ गया पर थोड़ी देर बाद ही वे असली विषय पर आ गये। कई दूसरी लड़कियों के रिश्ते उनके पास आ रहे थे। वे कम से कम बीस हजार लगवाना चाहते थे।

काफी मिन्नतें करने के बाद भी वे टस से मस नही हुए।

दो दिन यू ही देवलाली में भटकते रहने के बाद मैंने घर लौटना उचित समझा।

तागे से उतर आया हूं पर घर मे घुसने की हिम्मत नहीं हुई। देहलीज पर कदम रखते ही मुन्नी दिखाई पड़ गयी। बाबूजी शायद भीतर के कमरे में है। मुन्नी खिड़की और रोशनदान की झाड़-पोंछ कर रही थी, मुझे देखते ही लपककर भीतर के कमरे मे चली गयी। कुछ देर के लिए मैं बैठक में अकेला हो गया। धीरे-धीरे दरवाजे से चलता हुआ पलंग तक आया और धम्म से बैठ गया।

बैठने मे कुछ चोट-सी लगी है। पलग पर से गद्दा उठा लिया गया था, एक पतली-सी दरी पर चादर बिछी थी। धम्म से बैठने मे शायद इसीलिए मुझे पलंग का तख्ता चुभा है। मुन्नी जाते-जाते खिड़की का पर्दा धुलने के लिए उतार ले गयी। कमरा प्रकाश से भर गया! सामान्यत: इस कमरे मे इतना उजाला नही रहता। प्रकाश के साथ-साथ कमरे में कुछ उमस भी बढ़ आयी। न जाने क्यो अपने ही घर मे मैं स्वय को कुछ अजनबी-सा महसूस करने लग गया।

झुककर पैरों से मोजे उतारते हुए मुझे आभास हुआ कि बाबूजी बैठक में आ गये हैं। वे मुझसे कुछ ही दूर खड़े शायद मेरी तरफ घूर रहे हैं। उनकी इस चुप्पी का अर्थ क्या है मैं जानता हू। उनका यह मौन मेरे लिए अनपेक्षित नही है। जब मै ऊपर की ओर गर्दन उठाऊंगा और उनकी ओर देखूंगा; तब वे एकाएक मेरी तरफ देखेंगे—जैसे अब तक उनका ध्यान कहीं और था। मोजों को जूतो में ठूसते हुए मुझे महसूस हुआ कि वे आरामकुर्सी पर बैठ गये हैं। अब मेरी दृष्टि सीधे उनसे टकरायेगी और दो-चार मिनट तक मुझे अपने चेहरे पर किसी भी प्रकार का भाव न आने देने के लिए अपना सारा श्रम एक जगह एकत्र कर लेना होगा।

जूतों को पलग के नीचे खिसकाते हुए जब मैंने उनकी ओर निगाह उठायी तो पाया कि उनकी दृष्टि अखबार में जमी है। नहीं, ऐसा नहीं है। यह उनका मात्र अभिनय है। न वे इतने स्वाभाविक ढंग से यहां आकर बैठ सकते हैं, न ही अखबार पढने में उनकी किसी प्रकार की तन्मयता है। वे पूरी तरह भीतर से भरे बैठे है और अब मात्र प्रतीक्षा कर रहे हैं कि मैं अपनी ओर से कुछ कहना आरम्भ करूं।

'क्या हुआ ?' उन्होने अपनी सीधी निगाह मेरे चेहरे पर टांग दी।

मैं जानता हूं वे काफी पहले ही समझ गये है कि मेरा उत्तर क्या होगा। यह महज एक औपचारिकता है और शायद इसीलिए एक अपेक्षित बात को

सुनने की प्रतीक्षा में उनके चेहरे पर एक अतिरिक्त दृढ़ता-सी उग आयी है। और यह एहसास मुझे निरन्तर कमजोर बनाता चला गया। जब तक मैं जमीन में दृष्टि गडाये रखूगा, तब तक लगातार मेरी ओर देखते रहेंगे। मेरी दशा ठीक उस छोटे बच्चे की तरह हो गयी, सवाल का उत्तर न दे पाने पर मास्टर साहब जिसके चेहरे पर अपनी सख्त निगाह हटा ही नहीं रहे हैं।

'बोलो तो सही, आखिर क्या हुआ ?' बाबूजी ने अपनी पीठ आरामकुर्सी में टिका दी और एक निश्चिन्तता से भरे हुए अन्दाज में बैठे-बैठे अपनी दोनों टांगें हिलाने लगे।

मैं धीरे-धीरे अपनी शक्ति एकत्र करने में लगा। उनके लगातार अपनी ओर देखते चले जाने से, मेरे लिए अब अधिक देर मौन बनाये रखना कठिन हो गया। जवाब देने से पहले मन में हल्का-सा यह विचार उठा कि यदि ये एकाध मिनट के लिए उठकर चले जायें तो मैं पूर्णतः संयत हो जाऊं।

'फोटो वगैरह तो सब पसंद आ गया, पर'''।' मैं कठिनाई से बोल पाया।

'पर क्या ?' बाबूजी की आवाज मानों बहुत दूर से आयी।

'वे बीस हजार की माग करते है। बात लेन-देन पर आकर रुक गयी है।' मैंने गले का थूक सटकते हुए कहा।

'मैं तो जानता था यही होगा।' बोलते समय बाबूजी के चेहरे पर एक गर्व-सा फैल आया। 'ये आजकल के छोकरे अपने आगे किसी की बात सुनें-समझें तब न ? होगा वही जो होने वाला है पर जब तक अपनी चतुराई न जता लें तब तक चैन थोड़े ही आयेगा।

उन्होंने सारी बातें इस तरह कही जैसे कोई तीसरा व्यक्ति भी वहा मौजूद हो। और अब एक बार जो उनकी बड़बड़ाहट शुरू हो गयी तो मैं जानता हू, जब तक उनके सामने बैठा रहूगा, रुकेगी नही।

'वह तो अच्छा है, भगवान ने गंजे को नाखून नही दिये, वरना सिर खुजा-खुजाकर मर गया होता। मैंने हजार बार कहा, 'अरे भइया कोई नौकरी थोड़े ही करानी है। पढ़ा-ली, लिखा-ली बहुत हुआ अब। आखिर जाना तो उसे पराये घर ही है। और ज्यादा पढाने-लिखाने की औकात भी नहीं है अपनी। ज्यादा पढा लो, लिखा लो तो फिर वही पुरानी पंचायत जिसको देखो, गज भर का मुह फैलाए हुए है। हर तरह से खुश कर दो, फिर भी लडकी में सौ-सौ ऐब निकालेंगे—यह तो जरा मोटी है, नाक थोडी छोटी है'''कद्‌म जरा और जोरदार चाहिए। लड़की न हुई नुमाइश में रखा कोई खिलौना हो। हमारी कोई सुनेगा थोड़े ही ? हमने रोका था—मैट्रिक हो गयी अब बस करो!

पर नहीं; हम तो बी. ए. करायेंगे'''। अब और कराओ बी. ए, नहीं एम. ए. कराओ एम. ए.!

'भई नकल'''।' बाबूजी ने समझाने के अन्दाज में आगे भी कुछ बोलना चाहा पर उन्हें जोर से खासी आ गयी।

मैं लपककर पानी लाने के लिए उठा। मुन्नी पानी लाने के लिए रसोई की ओर दौड़ गयी। वह अब तक शायद दरवाजे के पीछे खड़ी सब सुन रही थी। मैं बाबूजी की पीठ सहलाने लगा। खांसी का जोरदार दौरा उठा है। कमजोरी के कारण उनका समूचा शरीर हिलने लगा। अब वे कुछ देर यू ही बेचैन-से रहेंगे। मुन्नी पानी ले आयी। मुन्नी के हाथ से पानी का गिलास लेकर मैंने बाबूजी के मुह मे लगा दिया। पानी पीकर उन्हे कुछ राहत-सी महसूस हुई पर इतनी ही देर मे वे थकान से बुरी तरह हाफने लगे। एक मासूम बच्चे की तरह उनका चेहरा क्लान्त हो आया। मुन्नी ने उनके मुह से टपकती लार को अपने आंचल के छोर से पोछा और अब उनकी पीठ सहलाने लगी।

मैं भीतर के कमरे मे चला आया। कमरे मे बेहद उमस है। गली की ओर खुलने वाली खिड़की मैंने खोल दी। गली मे हमेशा एक अंधकार-सा रहता है। ऊपर के माले वाले तमाम लोग अपना कूड़ा-करकट गली में ही फेंकते हैं। खिड़की खोलते ही बदबू का एक तेज झोंका तीव्रता से भीतर घुस आता है। मुझे झपटकर खिड़की बंद कर देनी पड़ी। कमरे मे उमस और भी बढ़ गयी। अपने आपको स्वाभाविक बनाने के लिए मैं कुछ देर यू ही खड़ा रहा और फिर धीरे-धीरे चलकर पलंग तक आया। बुशर्ट और पतलून उतार कर खूटी पर टांग दिये। बदन बेहद चिपचिपा आया।

गुसलखाने मे पहुचकर लोटे मे पानी लेकर मुह धोने में काफी राहत-सी महसूस हुई। तौलिए मे हाथ-पैर पोछता हुआ मैं वापस कमरे में आ गया। मुन्नी भीतर कमरे मे पलंग पर पड़ी अखबार पढ़ रही थी, मेरे वहां पहुचते ही वापस रसोई में चली गयी।

मुन्नी अब चुप-चुप सी रहने लगी है। शायद उसे यह अहसास-सा हो गया है कि अब घर में उसकी स्थिति एक बोझ की-सी हो गयी है। अभी दो साल पहले जब मुन्नी ने बी. ए. फर्स्ट डिवीजन मे पास किया था तो सबसे ज्यादा खुश बाबूजी ही हुए थे। सवेरे अखबार मे मुन्नी का रोल नम्बर फर्स्ट क्लास वाले कालम में देखकर वे उछल पड़े थे। प्रफुल्ल मन उन्होंने मुझसे कहा था, बी. ए. तो करा दिया अब इसी की टक्कर का लड़का भी तुम्हा देखो। हम तो बेपढ़े हैं, कहा जायें देखने किसी को।

दूकान पर जाते हुए वे पूरे मूड में थे। मुन्नी के बी. ए. पास करने का तार उन्होंने भेजा था मथुरा जीजा जी के यहा।

मुन्नी इण्टर मे थी, तभी से उसके रिश्ते आने लगे थे। जीजा जी ने एक-दो लडको के फोटो भी भेजे थे पर मेरी जिद थी कि कम से कम बी. ए. कर ले।

बडी जीजी का तो मैट्रिक पास करते ही ब्याह कर दिया गया था। उनका विवाह खाते-पीते घर में जरूर हुआ था पर घर सारा का सारा अनपढ़ था। जीजा जी केवल तीसरे दर्जे तक पढे थे। मामा जी ने उस समय कुछ विरोध भी किया था पर बाबूजी की दलील थी कि खाता-पीता घर है, लडका अपने पैरो पर खडा है, खानदानी लोग है, कानपुर मे नामी पीढी है'''और क्या देखना है ? उस समय मैं आठवें दर्जे मे था। और इन सब बातों को मैंने एक तमाशे की तरह देखा। बारह साल में जीजी पाँच बच्चो की माँ बन चुकी।

मुन्नी खाने की थाली रख गयी। मै पलंग से नीचे उतर आया।

'बाबूजी ने खाया ?' मैंने रोटी का कौर तोडते हुए पूछा।

'हाँ।' एक सक्षिप्त मे जवाब के साथ मुन्नी फिर रसोइ में चली गयी।

दो मिनट बाद मुन्नी पानी का लोटा पास रखकर वापस जाने को मुडी।

'तुमने खाया ?'

'खा लूगी।' मुन्नी जाते हुए क्षण भर के लिए टिठकी।

खाना खाकर मैं थाली रखने रसोई में आया। मुन्नी खाना खा रही है। क्षण भर के लिए सिर उठाकर उसने मेरी ओर देखा, फिर पूर्ववत् खाने लगी। उसके चेहरे को भापने की कोशिश करता हूं पर कुछ भी नही पाता हूं वहां। मुन्नी का चेहरा निर्विकार है। मौन की एक मोटी पर्त जैसे चट्टान की तरह हमेशा मुन्नी के चेहरे पर जमी रहती है। उसको खुशी-गम कुछ भी तो नजर नही आता। जैसे सारे हाव-भाव इसी चट्टान के नीचे दब गये है। मुझे लगता है मैं मुन्नी की आखो मे अधिक गहरे उतर भी नही सकता। मुझे उसकी आँखे माँ की आँखों से भी अधिक जड नजर आती है। माँ की आँखों मे तब भी एक दीवार, एक सतह दिखाई पडती थी; मुन्नी की आँखों मे गीले अंधकार मे लिपटे हुए शून्य के सिवाय मुझे और कुछ नजर नही आता।

मुन्नी के बारे मे सोचते-सोचते माँ की यादों मे जुड जाना बेहद कष्टप्रद लगता है। अक्सर माँ की एक बीमार और कराहती हुई तस्वीर जेहन मे उतरनी शुरु हो जाती है। माँ, जो अपनी छातियो को अपने कमजोर हाथों से दबाये अक्सर पुराने दमे के जोर मे हाफती रहती थीं। बेहद पीडादायक है उन क्षणों को फिर से बटोरना। लगातार तकलीफों से लड़ते हुए माँ का चेहरा

पिताजी के चेहरे से लगभग बीस साल बड़ा हो गया था।

आखिरी दिनों में माँ की गोल-गोल मटमैली आँखें इस तरह पथरा गयी थीं कि अधिक देर तक वहां देखने से मुझे डर लगता था। उन आँखों में बहुत दूर एक मोम की दीवार खड़ी मिलती थी और मुझे लगता था कि मेरे अधिक देर तक वहाँ देखते रहने से वह दीवार पिघलनी शुरू हो जायेगी। मैं जल्दी से अपनी निगाहें वहां से हटा लेता था। बाबूजी शुरू से ही इतने तेज तल्ख रहे हैं पर जाने क्यों ऐसा लगता था, वे भी माँ की गोल-गोल मटमैली पथराथी हुई आँखों में देखने से डरते थे।

माँ के आखिरी दिनों में मुझे महसूस होने लगा था, माँ एक फीते की तरह हैं। मुझे, मुन्नी और बाबूजी को आपस में बांधे हुए।

पलंग पर लेटे-लेटे मैं अलमारी में रखे मुन्नी के सिल्वर-कपों को देखता हूं। ये पांचों कप मुन्नी ने कालेज में निबंध और डिबेट की प्रतियोगिताओं में जीते थे। कप अपनी सिल्वर पालिश छोड़ चुके हैं और अब पीले और भद्दे लगने लगे हैं। मुन्नी पहले तो दस-पन्द्रह दिनों में स्प्रिट के फाहों से इन्हें साफ करती रहती थी, अब काफी दिनों से मैंने उसे इन्हें साफ करते नहीं देखा। एकाध बार मैंने कहना भी चाहा; पर तभी यह विचार आया कि मुन्नी इतनी लापरवाह नहीं हो सकती। जरूर अब उसके लिए इन चीजों का आकर्षण समाप्त हो गया है।

मैं सोकर उठा हूं। दोपहर को यूं ही लेटे-लेटे नींद आ गयी थी। चार-सवा चार बज गये हैं शायद। मुन्नी नीचे चटाई पर अखबार पढ़ रही है। अब मुझे जगा जानकर अखबार एक ओर रख रसोई में चली गयी है।

रसोई में स्टोव सुलगाने की आवाज आने लगी है। मैं उठकर बाहर के कमरे में आ गया।

बाबूजी अपनी अटैची में कपड़े वगैरह ठीक करने में व्यस्त जान पड़े। उनके आगे कपड़े और फुटकर सामान बिखरे पड़े हैं। कमरे में मेरे आने का एहसास शायद उन्हें हो गया है। एक बार उन्होंने गर्दन घुमाकर मेरी ओर देखा, फिर पूर्ववत् कपड़े अटैची में लगाने लगे। मैं पलंग पर बैठा हूँ इसे कदाचित् वे जान गये हैं।

'मैं आज रात को पठानकोट गाड़ी से आगरा जा रहा हूँ। अब इतना अच्छा रिश्ता टाला नहीं जा सकता। मुन्नी को देख तो रखा ही है उन्होंने, मैं बात पक्की कर आता हूँ। सयानी बेटी को और ज्यादा दिन घर बिठाये रखना ठीक नहीं है।' एक सांस में सारी बातें बिना मेरी ओर मुड़े कह गये।

मेरी इच्छा हुई है कि जोर से चीख पड़ूँ। तभी मुन्नी चाय का कप तिपाई पर रख गयी। मैंने मुन्नी को एक बार गौर से देखा फिर चाय का कप तिपाई पर से उठा लिया।

मैं चुपचाप चाय पी रहा हूँ और मुन्नी दरवाजे के पीछे से सहमी-सी मेरी ओर देख रही है।

रिश्ते

□ सतीश वर्मा

"नहीं आयेगा गोपाल ! अब उसे फोन करना फिजूल है।"

घड़ी के चक्करदार डायल में वह दूर रहना चाहता है, बहुत दूर। वह रिश्ते बनाने से डरता है। एक साल में ही हम लोगों के इतने नजदीक आ गया है। हमारी एक शाम भी उसके बिना भरपूर नहीं कटती। लेकिन किसी-दिन उसे यह क्या हो जाता है! सबसे पहली बार मुझे उसमें खुलेपन की एक सुखद झलक दिखाई दी थी, जैसे मेरे मन पर किसी नियोन साईन का प्रकाश छा गया हो। मैंने चाहा था वह मुझे भाभी माने, पर होली मिलने के लिए मैं उसका कितना इंतजार करती रही थी और जब वह आया था रात के दस बजे, तब मैं कपड़े भी बदल चुकी थी। मैंने सोचा था उसके हाथों में अबीर होगा, पर वह आते ही रिकार्ड लगाकर सोफे पर लेट गया था।

कुछ दिनों से वह इतना निरीह नजर आ रहा है कि मुझे उससे सहानुभूति हो गयी है। मुझे वह अपने से छोटा लगने लगा है, इसलिए आज मैंने राखी बांधने के लिए उसे सुबह ही बुलाया था। लेकिन दो बज रहे हैं, अब वह क्या आयेगा!

"मैं खाना लगाती हूं गोपाल ? अब हम लोग कब तक इंतजार करेंगे ! फिर तुम्हारा ड्यूटी पर जाने का समय हो जायेगा।"

"तुम्हें चाहिए था उसके घर जाकर राखी बाध आतीं, शायद भूल ही गया हो।"

"अजी तुम्हारी तरह नहीं है। राखी बंधवाने की तो उसे याद रखनी थी'''लेकिन तुम भी ठीक कहते हो। मैंने उसे यह थोड़े ही बताया था कि मैं तुम्हें राखी बाधने का इंतजार करूंगी।"

"यह उसे मालूम था शायद।"

"शायद'''!"

तो उसे कोई जीवन संगिनी बना ही लेनी चाहिए। कौन न उसे अपनी बेटी देना पसद करेगा ! इतना पढा-लिखा, इतना योग्य है वह ! और अब बच्चा भी तो नही है। अपनी मा को वह 'हा' क्यो नही कर देता। मेरी दो घंटे तक हुई थी उससे बहस। लेकिन उसने सारा गुस्सा मा पर उतारते हुए कहा था —"ठीक है, मा मुझे बहुत प्यार करती है, सारा मामला उन्होने मुझ पर ही डाल रखा है, वे मुझे विवाह के लिए मजबूर कर रही है। लेकिन एक बार मैंने एक गैर जात की लडकी का नाम ही ले दिया था कि उन्होने दिन भर खाना नही खाया। मैं जानता हू जो रिश्ते उनके पास आ रहे है ! एक का भी तो सिर-पाव नही है। मुझे मालूम है मा मुझे कैसा प्यार करती है कैसे आसू मेरी याद मे बहाती है। उनकी मजबूरी है। वह औरत नही मा है और मा के साचे से बाहर निकल नही सकती। मै जब उनके बेटे के रूप मे सोचता हू तो मै भी साचे मे ढल जाता हू। एक आदमी के रूप मे मै कुछ भी सोच सकता हूं। कुछ भी कर सकता हू। लेकिन उस निर्विघ्नता का भी कुछ अर्थ नही है। लगता है, मेरी आवाज कोई सच नही खोज सकती ! मै किस पर विश्वास करू···।"

लेकिन न जाने क्यो वह मुझ पर झल्लाने की मुद्रा बना रहा था। जब कभी वह थोडा-सा खुलता है, तो झल्लाने लगता है। ऐसा शायद एक-दो बार ही हुआ है। उसे किसी से कोई शिकायत नही है, पर एक बात मैने परखी है, जब कभी मै उसे बहुत कुरेदती हू। तब वह उन्ही लोगों के ऊपर झल्लाने लगता है, जिनकी बाते वह रात-दिन सुनाता है—लतीफे और किस्से तारीफे और बढाई। ढकोसलो का वह मजाक उडाता है। जिस पर वह बैठा है उसके सहयोगियो से उसे नफरत छूटती है। लगता है, कुछ पल मे ही वह कूद पड़ेगा।

शायद उसके सबसे बडे दुश्मन है उसका घर, उसके मा-बाप, उसके परिवार वाले। मैंने तो किसी को देखा नही है पर उसकी झल्लाहट पर विश्वास नही होता।

कभी-कभी वह बहुत मस्ती के मूड मे होता है। न जाने क्यो मैं उसे गोपाल से तौलने लगती हू। गोपाल की यह मस्ती कायम रह कर एकरस हो जाती है, लेकिन उसकी मस्ती, खुमारी में और खुमारी थकावट मे तब्दील हो जाती है। गोपाल को दोपहर में सोने की आदत है, लेकिन रविवार की दोपहर को वह देर, देर तक मेरे साथ बैठा पोकर खेलता रहता है।

एक बार मैंने आर. के. नारायन का 'बैचलर आफ आर्ट्स' देते हुएउसमे कहा था, 'बडी अच्छी किताब है, मैंने खत्म की है। तुम भी पढो।' लेकिन उपन्यास उसका पढा हुआ था। वह कहने लगा, 'मैंने यह किताब आठ-दस साल पहले पढी थी, तब लगा था ऐसा कुछ नही होता होगा, पर सब कुछ

बदल जाता है। समय हमें बांध नहीं सकता, फिर रिश्ते ही हमें रूढ़ियों में क्यों बांधते हैं। जो वर्जनाएं हमें एक बार स्वतंत्र जीवन जीने के लिए मजबूर करती हैं, वे हमारे पीछे विलास की रजत जंजीरें लेकर क्यों घूमती हैं। जो हमारा वर्तमान है उसके प्रति हम वफादार क्यों न रहें।'

उसकी बातों से लगता है कि उसने स्वयं को हर चीज का अभ्यस्त कर लिया है। जिन बातों से उसे सबसे ज्यादा लगाव था, उन्हें ही भूल गया है। शायद बहुत सारे 'शॉक्स' ने उसे 'शॉक प्रूफ' बना दिया हो। लेकिन उसकी आंखों में कभी-कभी तनहाई झलकती है। उसका भावावेश कहीं अंदर ही अंदर घुमड़ कर रह जाता है। मुझे उसकी विडंबनाओं में रश्क होता है। लगता है, मैं उस पर प्रयोग करूं।

मुझे बहुत बार लगा वह कभी प्रेम-वेम का शिकार रहा है। लेकिन उसके संयम का शिरस्त्राण मुझसे बेध नहीं मिलता। यह बहुत सामान्य लगता है, सहेजने और संभो लेने की वस्तु। लेकिन कभी-कभी उसके उखड़ने के फेज आते हैं। कारण तो कुछ होता ही होगा।

++

शाम हो चुकी थी। बादलों से ढका हुआ माहौल और भारी हो गया था। छिटपुट बूंदाबांदी भी हुई थी। बाहर लैंप शेड पर बूंदों की झालर लटक रही थी। एक-एक बूंद गिरने की बाट जोहती थी।

कमरे की घुटन मुझे अंदर जाने से रोक रही थी। तभी घंटी बजी। वह मेरे कुछ रिकार्ड्स लेकर आया था। कमरे में वह इस तरह से खड़ा था जैसे सब कुछ उसका अपरिचित हो। मुझे इस अपरिचय में नवीनता दिखी।

मैंने उससे सुबह न आने का कारण जानना चाहा। उसने बताया कि उसका एक बहुत प्यारा दोस्त, जिसकी हाल ही में शादी हुई है, पत्नी के साथ जर्मनी जा रहा था। उसका तार आया था कि एयरपोर्ट पर मिलो। मैंने उससे पूछा, "तो तुम्हें एयरपोर्ट पर जाने की वजह से नहीं आना मिला?" उत्तर में उसने कहा था, "कहां गया एयरपोर्ट।"

उसे खुशी के क्षण सह नहीं मिलते। उसके मन में तूफान-सा आता है और उसमें इतना मथता है कि खुशी का उसके लिए कोई मानवीय मूल्य नहीं रह जाता और फिर वह उस खुशी से बदला लेता है अपने को चुका कर। उस खुशी को जीता भी है, तो सहज करके। गम उसने छोटे-छोटे पाल रखे हैं। शायद इनके दौरे उसे खुशियों का मुंह चिढ़ाने को प्रेरित करते हैं।

घर, नौकरी, मित्र, समाज, लगता है सबको झेलने का वह अभ्यस्त हो गया है। लेकिन कभी-कभी इनसे दूर रहने की भी उसे तीव्र इच्छा होती है। उसका संतुलन डगमगाने लगता है। शायद यह उसकी एक कमजोरी है।

उस समय उसकी एयरपोर्ट भी न जाने की बात मुझे अजीब नहीं लगी। पर मुझे लगा जैसे इससे मन में कहीं कोई अधूरापन है, जिसको भरने के लिए वह एक और अधूरेपन को जन्म दे रहा है। इस शून्य की स्थिति का उपचार कैसे किया जाये!

मैं ड्रेसिंग टेबुल के सामने बैठी यूडीकोलोन स्प्रे कर रही थी। वह पलंग से उठा और मेरे पीछे आकर खड़ा हो गया। मेरे हाथ अचानक सहम गये। मैंने अनुभव किया उसने मेरे कंधों पर गर्म हाथ रख दिये हैं। मैं अवश हो गयी हूं। शीशे से मैं निगाह नहीं मिला पा रही। मैंने आंखें बंद कर ली। वह मुझसे सटता गया। मैं उठने को हुई। मुड़कर उसकी तरफ देखा। उसकी आंखों में झांककर देखा। वे उमड़ रही थीं, लेकिन वह रो नहीं सकता था। उसके होंठ एक बार थरथराये, लेकिन उसने कस लिये। मैंने उसकी दोनों बांहों को हिलाया। वह मुस्कुरा दिया—बहुत शरारत भरी मुस्कान। मुझे लगा जैसे वह अपना मुंह झुका कर मुझे सूंघ रहा है। उसका चेहरा मेरे इतने नजदीक आ गया कि मुझे उसके होंठों की धारियां, उसकी त्वचा का पोर-पोर साफ दिखाई देने लगा। मैंने उसके गाल पर चुटकी ली। उसने मेरी पीठ पर घूंसा लगाया और हम दोनों बहुत जोर से हंस दिये।

◆◆

जब मैं रसोई में पहुंची तो मेरी पीठ में उसके घूंसे की धमक भी थी और स्पर्श भी। मुझे लगा गोपाल के घूंसे में स्पर्श ही स्पर्श होता है, धमक नहीं। मैंने पीछे मुड़कर देखा वह रसोई में खड़ा था। मेरी पीठ उसकी तरफ थी। एक फुरेरी-सी मची, मैंने चाहा वह मेरी पीठ धीरे-धीरे थपथपाये या मेरे कंधे पर एक हाथ रखकर दूसरे हाथ से अंगुलियां फिराये।

लेकिन वह दूसरे कमरे में जा कर अखबार पढ़ने बैठ गया था और पढ़ रहा था संयुक्त राष्ट्र संघ और पश्चिम एशिया की खबरें, नक्सलवादियों और अमुक राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने की खबरें।

मुझे लगा अब मौसम साफ हो रहा है। बूंदाबांदी थम गयी है। गोपाल के आने का समय हो रहा है। उनके आते ही वे दोनों अपने-अपने ऑफिसों की चर्चा करेंगे, अपने-अपने बॉस और चपरासियों को गालियां निकालेंगे। फिर शायद खाना खाकर रमी खेलने बैठ जायें उसको किसी बात में एतराज

नहीं होगा, रमी बनने में एक पत्ते की कमी उसे हमेशा अच्छी लगती है। पत्ता आने तक का गम पीने का वह अभ्यस्त हो गया है। मुझे लगता है उसके पास रमी पूरी करने वाले कितने ही पत्ते आते हैं, लेकिन वह उन्हें उठाकर भी फेंक देता है। उसकी ताश के एक भी पत्ते में आस्था नहीं है, क्योंकि ताश का क्या, आज जो पत्ते उसके हाथ में हैं अगली बार किसी दूसरे के हो सकते हैं। दूसरे गुलाम गुलाम ही रहने वाला है दुक्का दुक्का ही। अच्छा है, बाजियों को बाजियों की तरह ही खेला जाये।

मैं रसोई से आ कर उसके पास बैठ गयी। मैंने पाया वह इतनी देर में फिर कल जैसा लग रहा है, बिल्कुल परिचित चेहरा। मुझे उसकी बात में यकीन होने लगा है—हम लोग गलत रिश्ते जी रहे हैं। अपने संबंधों को नाम देकर हमने सीमाओं में बांध दिया है। मैं उनके सामने मिथ्या पड़ गयी हूं। मुझे उसकी किसी और तरह से आवश्यकता है।

अकेलापन

☐ अक्षय जैन

'बी रोड़' के नुक्कड़ वाली बिल्डिंग से ज्यों ही गुजरे रातरानी की तेज महक से बातचीत का सिलसिला टूट गया। वे अनजाने एक दूसरे के और करीब आ गये थे और एक अजीब-सी गरमाहट अनुभव कर रहे थे।

"बहुत तेज खुशबू है।'

"हां।'

"तुम्हें रातरानी पसन्द है ?"

बोली—"यह जिस ढंग से दीवारों पर छा जाती है, वह बड़ा कलात्मक लगता है। क्यों ?" उसने काफी देर बाद उसकी तरफ नजर उठायी थी।

"तुम हर चीज में आर्ट ढूंढती रहती हो ! जिन्दगी से इतना क्यों डरती हो ?" वह मन ही मन खुश था कि उसने कोई गहरी बात कही है और वह शायद इसका कोई जवाब नहीं सोच पाएगी।

"सच्चा आर्टिस्ट जिन्दगी से नहीं डरता। वैसे मैं कभी-कभी लोगों से नहीं डरती, अपने आप से डर जाती हूं। डर भी जिन्दगी का एक हिस्सा है। है ना ?" उसके चेहरे पर उदासी छा गई थी। वह स्वयं अपनी कही हुई बात पर सोचने लग गई थी ! समुद्र अंधकार में एक उबड़-खाबड़, काले मैदान-सा लग रहा था और वह जानती थी कि अगर वह दौड़ने के लिए कदम बढ़ायेगी तो छपाक के बाद सब कुछ समाप्त हो जाएगा।

रोज यही क्रम रहता। वे प्वाइंट तक जाकर 'फोर शोर रोड़' के बीच की ऊंची इमारतों से निकल कर क्रासिंग तक आते, फिर हाईकोर्ट के बगल वाली सड़क पर टहलते रहते। कभी-कभार 'वीनस' में काफी पी लेते। वह अक्सर कोने वाली मेजपर बैठने का आग्रह करता, इच्छा न होने हुए भी मान जाती। वह जब-तब मौके-बेमौके बांह छू लेता, हाथ पकड़ लेता, तो वह हौले-हौले हाथ अलग कर देती या फिर मुस्करा देती। ऐसा लगता जैसे वह किन्हीं दो स्थितियों के बीच सन्तुलन स्थापित करने की कोशिश कर रही है। उसके व्यवहार में एक स्थायी तनाव बना रहता।

वे क्रासिंग पार कर रहे थे। सामने से एक तेज रफ्तार से जाती हुई कार का फायदा उठाकर लड़के ने उसकी बाँह पकड़ ली। लड़की ने अपने शरीर में सिहरन-सी महसूस की। ऐसे सुखद स्पर्श की कांक्षा उसके मन में उठती है, लेकिन कोई और शक्ति आकर उसे दबा देती है। सुख के किसी सन्दर्भ को न वह खुल कर भोग सकती है और न अस्वीकार करना चाहती है। एक दुर्निवार संघर्ष के लिए वह बेचैन-सी दिखाई देती है। वह जानती है, उसके लिए कोई भी रास्ता साफ नहीं है। वह कांप जाती है, यह सोच कर कि घने कोहरे में एक ऐसी सड़क पर एक ऐसे पुरुष के साथ हमेशा चलने को मजबूर कर दी गई है, जिसका चेहरा वह नहीं देख सकती।

बाँह छोड़ दो," उसकी प्रश्नवाचक निगाहों में अनुरोध था।

"क्यों अच्छा नहीं लगता ?"

ऐसी स्थिति उसके लिये असहनीय है। क्या कहे ?

हाँ ? ना ? वह जो चाहती है, क्या वह कह सकती है ? वह उसे नाराज भी नहीं करना चाहती और एक सीमा से आगे बढ़ने भी नहीं देना चाहती। वह चुप रही।

उस दिन भी यही हुआ। वह पिक्चर जाने के लिये जिद कर रहा था और वह इन्कार करती रही थी। हालांकि वह पिक्चर वो खुद देखना चाहती थी, पर उसके साथ नहीं। एंथनी पर्किन्स और बर्गमा की 'गुड़बाइ अगेन'। वह जानती थी कि हाल के अंधियारे में वह ज्यादा सक्रिय हो उठेगा और साथ ही यह डर था कि वह खुद कहीं तरंग में न खो जाये।

"क्यों अंग्रेजी पिक्चर पसन्द नहीं आती ?" उसने बड़े मीठे स्वर में पूछा था।

"समझ नहीं आती।" उसने मुस्करा कर जवाब दिया था।

"तो फिर किसी हिन्दी पिक्चर में चलेंगे।" वह यह भूल गया था कि वह एक कानवेंट में पढ़ी हुई लड़की है और दो साल एक अंग्रेजी माध्यम स्कूल में अध्यापन कार्य भी कर चुकी है।

"यह कहो न कि पिक्चर देखनी है, कोई भी। फिर तुम 'गुडबाई अगेन' के लिये क्यों जोर दे रहे थे ?" बाद में वह मंद-मंद मुस्कराती रही।

वह कट गया था, उसकी मुस्कराहट में जो व्यंग था, वह उसके अहम के लिए एक चोट थी और उसे अपने प्रस्ताव के नामंजूर होने से आत्महीनता भी महसूस हो रही थी, लेकिन इसके सिवा रास्ता भी क्या हो सकता था ? पहल तो उसे ही करनी होगी। प्रयास करने में क्या बुरा था ? बाद में उसने बड़ी शिष्टता-पूर्वक बताया था कि वह पिक्चर क्यों नहीं आ सकेगी और उसके खुलासे से उसे काफी संतोष भी हुआ था।

बातों ही बातों मे कब वे युनिवर्सिटी के अदर बगीचे मे आ गये थे और एक बेंच पर बैठ गये थे. उन्हे पता नही चला। युनिवर्सिटी के कपाउंड मे एक रहस्यमय चुप्पी छाई हुई थी और किसी रोमानी उपन्यास के आधे पढे हुए अध्याय की तरह आकर्षण का केन्द्र बनी हुई थी। वातावरण ने पूरा सन्दर्भ बदल दिया था और वे अपने आप मौन हो गये थे। उन्हें जोडने वाली एक ही चीज थी—हवा। उसने लडकी का हाथ अपने हाथ मे लिया इस बार लड़की ने कोई विरोध भी नही किया था।

"एक बात पूछू, जवाब दोगी ?" वह दबे स्वरो मे बोला।

"संभव हुआ तो…"

"क्या-क्या तुम मुझे चाहती हो ?" वह कहते-कहते लडखडा गया था।

वह प्रत्युत्तर मे कुछ नही बोली। वह अपने भीतर एक भयकर तूफान से लड रही थी और स्वय को कमजोर पा रही थी!

"क्या इस बात का जवाब नही दोगी ?" उसने फिर आग्रह किया और अपना हाथ उसकी कमर के इर्द-गिर्द डाल दिया। मुलायम देह का स्पर्श उसे एक स्वप्निल संसार की तरह लग रहा था। उसने उसे थोडा और नजदीक खीच लिया लडकी के विरोध न करने से उसका साहस बढ गया था।

"शहरों मे ऐसी जगह पाना मुश्किल हो गया है, जहाँ एकांत हो। भीड से बचना अब संभव नहीं रह गया है।" वह रुक गया था, फिर बडे भावपूर्ण लहजे मे बोला—"ऐसा करे कि हम होटल में कमरा किराये पर ले ले ?"

लड़की पर इस बात की प्रतिक्रिया अपेक्षित नही हुई। पता नही क्यो, वह झटक कर अलग हो गई और सटक कर बैठ गयी। जैसे कोई झटका उसे अपने सही अस्तित्व का बोध करा गया हो उसे दुविधा से बचाने का मार्ग बता गया हो। उसे लग रह था, तूफान गुजर चुका है। वह राहत महसूस कर रही थी।

"तुम शायद मुझे गलत समझ बैठे हो। मेरे पति आर्मी मे हैं और उन्हे अकसर मुझसे दूर रहना पडता है। मैंने जानबूझ कर यह बात तुम्हें नही बताई। तुम्हारे प्रति मैं आकर्षित अपने अकेलेपन की वजह से हुई थी और जानती था कि तुम्हारा साथ पाने के लिए थोड़ी रियायत तो देनी ही होगी। तुम्हारी जगह कोई और होता तो उसकी अपेक्षायें भी इससे भिन्न नही होतीं…!"

वह काफी देर तक चुप बैठा रहा था, फिर वे दोनों उठकर युनिवर्सिटी से निकल आये थे।

बिना कोण का त्रिकोण

□ विनोद गोदरे

मैं उससे नही मिलना चाहता था इसलिए पास के ईरानी रेस्त्रां मे घुस गया। चाय पीना मुझे अच्छा नही लगता किन्तु उस समय चाय पीने का ही मूड बन गया। मैंने बैरे से चाय मगाई। मेरा ध्यान अभी उस पर से हटा नही था। मुझे ऐसा लगा कि जैसे उसने मुझे देख लिया है। मैं तुरन्त कुर्सी से सटे हुए शीशे में अपना मुह देखने लगा, परन्तु मुझे ऐसा लगा कि अभी भी वह मुझे ध्यान से देख रहा है। मैं आहिस्ते से सीटी बजाने लगा। वैसे मुझे सीटी बजानी नही आती। मैं किसी तरह उससे मिलना बोलना चाहता हू। बैरा चाय ले आया है। मैं चाय नही पीना चाहता हू, चाय का मूड चला गया है पर चाय के कप को मुह से इस तरह लगा लेता हूं कि मेरा मुह छिप जाए और वह मुझे पहचानने की कोशिश में असफल हो जाये। मैं बहुत धीरे-धीरे चाय पीता हू; पर चाय खत्म हो गई है किन्तु वह अभी भी होटल के बाहर खडा है, लगता है मेरे बाहर निकलने की प्रतीक्षा कर रहा है। मैं अखबार मगाकर पढना शुरू कर देता हू। खास-खास समाचारो से सिनेमा के नाम, सपादक के नाम पत्र से लेकर छपे विज्ञापन तक पढ डालता हू पर लगता है जैसे उसे कोई काम नही है और वह मुझसे मिले बगैर मिले नही जायेगा। कमबख्त होटल के अन्दर ही क्यो नही आ जाता किन्तु वह बहुत कीमती सूट पहने हुए है कम से कम एक हजार रुपये का तो होगा और जिस होटल मे मैं बैठा हू उसमे प्रायः मजदूर अथवा निम्न मध्य वर्ग के ही ग्राहक आते है। शायद इसी हिचक के कारण वह भीतर नही आ रहा है। मुझे इस खयाल से हसी आ जाती है परन्तु मैं हसता नही हू। बल्कि जितना अधिक सभव हो पाता है, मै चेहरे को अधिक से अधिक गभीर बनाये रखने की कोशिश करता हूं।

मुझे उससे डर लगता हो अथवा मुझे उसका कोई कर्ज देना हो ऐसी कोई बात नही है फिर भी मैं उससे नही मिलना चाहता हूं। मैं उससे मिल

कर उसे दुखी नही करना चाहता हू । मैं सोचता हूँ कि ग्रभी भी वह भीतर ही भीतर कितना दुखी होगा । जब पिछले दिनों उसका मित्र ग्रस्पताल मे मर गया था तब उसे कितना गहरा सदमा पहुंचा था । इसका ग्रंदाज ग्राप इसी से लगा सकते है कि मैं इसके भी ग्रात्महत्या करने की खबर का इतजार दो दिनो तक करता रहा किन्तु धैंवस गॉड यह मरा नही । नहीं तो ग्रपने लंगोटिया यार की मौत पर कौन दोस्त ग्रात्महत्या करने पर उतारू नही हो जाता । उसने मुझे पत्र भी लिखा था जिसमे बहुत ही मार्मिक शब्दो मे ग्रपने मित्र की मृत्यु का समाचार दिया था ग्रौर उस पत्र की भावना ग्रौर भाषा को पढकर ही मैं ग्रत्यधिक चिंतित ग्रौर भयभीत हो उठा था ।

मुझे ग्रच्छी तरह याद है । एक बार इसका दोस्त जरा बीमार था तो पता नही यह कहा कहा से कौन-कौन से विशेषज्ञो, डाक्टर्स को बुला लाया था । शमशान मे जाकर किसी तांत्रिक से भभूत तक ले ग्राया था । पता नही कितने गण्डे ताबीज वहा वहा से ले ग्राया था । वही दोस्त ग्रस्पताल मे ग्रापरेशन टेबल पर ही मर गया था । जब मुझे यह समाचार मिला तब सबसे पहले इसी का चेहरा मेरी ग्राखो के सामने घूम गया था । बाद मे मृतक दोस्त के मा बाप का चेहरा ।

मैं थोडा-थोडा कवि हू इसलिए इसकी वेदना की कल्पना सहज ही कर सकता हू । मैं ग्रच्छी तरह जानता हू कि ग्रगर मै इससे जाकर मिलूगा तो यह सडक पर ही फफक-फफक कर रोने लगेगा । तब वह यह भी भूल जायेगा कि वह बेशकीमती सूट पहने हुये है कि वह एक प्रतिष्ठित ग्रादमी है । वह इतने जोरो के साथ रोयेगा कि उसे सभालना समझाना बहुत कठिन हो जाएगा । मैं इस समय उसे फिर दुःखी नही करना चाहता हू । सच बात तो यह है कि दोस्त के मरने के बाद भी मै इसी भय से इससे मिलने नही गया । मुझे निरन्तर यह भय लगता रहा है कि यह कही कुछ उलटा सीधा न कर बैठे । ग्रौर इस कारण लगातार मे इससे मिलना टालता रहा । मै स्वय ग्रपने ग्रापको ग्रपराधी समझता हू कि मैंने दोस्त की मृत्यु पर सहानुभूति प्रकट नही की ग्रौर इसके पत्र का उत्तर तक नही दिया परन्तु सच बात तो यह है कि मैं भी भीतर ही भीतर बहुत परेशान था । उसकी मौत ने मुझे भी काफी विचलित कर दिया था ।

ग्रब वह चारो ग्रोर नजर घुमा कर देखने लगा है । कभी-कभी वह घडी की ग्रोर भी देख लेता हैं । शायद ग्रब वह मेरी प्रतीक्षा करते-करते थक गया है ग्रौर उकताहट में चारों ग्रोर देख रहा है । होटल का बैरा बार-बार ग्राकर मुझसे चाय ग्रौर बिस्कुट के लिए पूछ रहा है । इसका मतलब है कि ग्रब शराफत के साथ जल्द से जल्द मुझे होटल से चल देना चाहिए । न चाहते

बिना कोण का त्रिकोण

□

मैं उससे नही मिलना चाहता था इसलिए पास के ईरानी
गया। चाय पीना मुझे अच्छा नही लगता किन्तु उस समय च
मूड बन गया। मैंने बैरे से चाय मगाई। मेरा ध्यान अभी
नही था। मुझे ऐसा लगा कि जैसे उसने मुझे देख लिया है
से सटे हुए शीशे में अपना मुह देखने लगा, परन्तु मुझे ऐ
भी वह मुझे ध्यान से देख रहा है। मैं आहिस्ते से सीटी
मुझे सीटी बजानी नही आती। मैं किसी तरह उससे मिल
हू। बैरा चाय ले आया है। मैं चाय नही पीना चाहता
चला गया है पर चाय के कप को मुह से इस तरह लगा
मुह छिप जाए और वह मुझे पहचानने की कोशिश मे अ
बहुत धीरे-धीरे चाय पीता हू; पर चाय खत्म हो गई है f
हो ल के बाहर खडा है, लगता है मेरे बाहर निकलने व
है। मै अखबार मगाकर पढ़ना शुरू कर देता हू। खास
सिनेमा के नाम, सपादक के नाम पत्र से लेकर छपे विज्ञा
हू पर लगता है जैसे उसे कोई काम नही है और वह मु
नही जायेगा। कमबख्त होटल के अन्दर ही क्यों नही '
बहुत कीमती सूट पहने हुए है कम से कम एक हजार र
जिस होटल में मै बैठा हू उनमे प्राय: मजदूर अथवा
ग्राहक आते हैं। शायद इसी हिचक के कारण वह
मुझे इस खयाल से हसी आ जाती है परन्तु मैं हसता
अधिक सभव हो पाता है, मै चेहरे को अधिक से अ
की कोशिश करता हू।

मुझे उससे डर लगता हो अथवा मुझे उसका
कोई बात नही है फिर भी मैं उससे नही मिलना चा

नीले परदे

☐ विश्वदेव शर्मा

बाबू रामसरन को एक बड़ी चिंता यह थी, कि रिटायर होने पर सरकारी क्वार्टर छोड़ेंगे, तो इस ढेर-सारे सामान को कहा ले जाएंगे। इसलिए वे कुछ समय पहले से ही एक मकान बनवा लेने के चक्कर मे थे। और शायद दुनिया के जितने चक्कर हैं, उनमें से मकान बनाने का चक्कर सबसे बडा है। ईश्वर का शुक्र है कि यह चक्कर किसी तरह खत्म हुआ—जमीन खरीदने वालों कोआपरेटिव सोसाइटी ने बरसों तक उनके रुपये का ब्याज खा कर, आखिर जमीन खरीद ही दी और ठेकेदार ने भी सीमेंट में अठगुनी बजरी मिला कर उनका मकान बनवा ही दिया, पंडित जी ने भी ग्रहों के साथ काफी धक्का-मुक्की कर के ग्रह-प्रवेश की भी ऐसी साईत निकाल दी, जो बाबू रामसरन के रिटायर होने से पहले पडती थी। रिटायर होने की कार्यवाही पूरी होते-न-होते रामसरन जी अपने नये घर मे आ गये।

रामसरन जी की जिन्दगी का छकडा उम्र के पचपनवें मोड़ पर क्या मुड़ा, कि जैसे रुक ही गया। अच्छा बड़ा मकान और वे उसमें अकेले ही पड़े रहते। वैसे उनका कुनबा भी छोटा न था। दो लड़कियां थी, पर उनके विवाह हो चुके थे। बड़ा लडका बनारस में नौकरी करता था। उससे छोटा बंगलोर में। सबसे छोटा लड़का कलकत्ते के स्टेटिस्टिकल इंस्टीट्यूट मे अभी पढ़ रहा था। पत्नी बनारस में बड़े लड़के, बहू, पोते और पोतियों की देख-भाल और साथ-साथ काशीवास कर रही थीं। इस तरह इतना बड़ा कुनबा होते हुए भी बाबू रामसरन बिल्कुल अकेले रह गये थे। 'पानी में मीन प्यासी' शायद कबीरदास जी ने कुछ ऐसी ही परिस्थितियों मे कहा होगा।

नये मकान मे सामान रखवाने की यथाकिंचित व्यवस्था भी रामसरन जी के ही सिर पड़ी, क्योंकि उनकी पत्नी अभी आ नही सकती थीं—बड़ी बहू का पांव भारी जो था।

हुए भी मैं फिर चाय मगवाता हू। चौथी सिगरेट फूंक चुका हूं। चाय का नया प्याला भी खत्म हो गया है। होटल मे ग्राहकों की संख्या बढ़ती जा रही है। होटल मालिक बार-बार घंटी बजा रहा है। यह घंटी हमारे जैसे बहुत देर से जमे हुए ग्राहकों को उठाने का सिगनल है।

मुझे अब उससे मिलना ही पड़ेगा। उसके दर्द और दु:ख को सुनना ही पड़ेगा। और बुर्जुआ अदाज में उसे मौत की अनिवार्यता पर घिसा-पिटा उपदेश देना ही पड़ेगा। इसके सिवाय कोई चारा नही है। मैं उठता हूं। पर्स से पैसा निकाल कर काउन्टर पर देता हूं। देखता हूं उसके चेहरे पर परेशानी बढ गई है। मैं अपने आपको उसके रुदन को सुनने के लिए तैयार करता हू। मुझे उसे क्या कहना होगा। मैंने अच्छी तरह सोच लिया है।

मैं होटल से नीचे उतरता हू। वह अब किसी मकान की ओर देख रहा है उसके चेहरे के भाव तेजी से बदल रहे है। मुझे लगता है कि पिछली स्मृतिया उसे बुरी तरह कुरेद रही हैं। एकाएक वह मेरी ओर देखता है। मेरा चेहरा पीला पड जाता है। मुझे कंप-कपी आने लगती है किन्तु उसका चेहरा खिल उठता है। वह बड़े तपाक से हाथ मिलाता है और पूछता है—अरे दुबे तुम यहा कहां? और फिर बिना मुझे उत्तर देने का मौका दिये बोला "बहुत दिनो से दिखाई नही दिये। तबियत तो ठीक है। आजकल नौकरी तो वही है। घर मे तो सब कुशल मंगल है।" वह जोर-जोर से जल्दी-जल्दी सास लेते हुए बोल रहा था।

मेरा डर अब और अधिक बढ जाता है। मुझे लगता है कि बस अब यह रोना शुरु कर देगा और हमारे चारो ओर बहुत बडी भीड जमा हो जायेगी। दोस्त की मौत का रंज कितना होता है। मैं भीड को कैसे समझा पाऊंगा। मेरे चेहरे पर शिकन आने लगती है पर जब मैं उसकी ओर देखता हू तो उसके चेहरे पर एक ताजी मुस्कराहट देखता हू। वह अब सामने की ओर बडी हसरत भरी निगाहो से देख रहा था। मेरी दृष्टि उसकी नजरो का पीछा करती है। देखा एक निहायत खूबसूरत लडकी बड़ी मादक गति मे चलती हुई उसकी ओर आ रही है। वह आकर उसके पास खडी हो गई। उसने कुछ नाराजी और कुछ उत्साह के स्वर मे उससे कहा "अरे नीलू तुमने कितनी देर कर दी। मैं करीब एक घन्टे से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हू।" उसने हाथ उठाकर टैक्सी रोकी और नीलू का हाथ अपने हाथो में लेकर टैक्सी मे बैठते हुए वह मुझसे बोला—"यार अभी जल्दी में हूं। कभी घर आना। टैक्सी धीरे से वहा से चली गई और मुझे लगा कि सचमुच इसने आत्महत्या कर ली है।

नीले परदे

☐ विश्वदेव शर्मा

बाबू रामसरन को एक बड़ी चिंता यह थी, कि रिटायर होने पर सरकारी क्वार्टर छोड़ेंगे, तो इस ढेर-सारे सामान को कहां ले जाएंगे। इसलिए वे कुछ समय पहले से ही एक मकान बनवा लेने के चक्कर में थे। और शायद दुनिया के जितने चक्कर हैं, उनमें से मकान बनाने का चक्कर सबसे बड़ा है। ईश्वर का शुक्र है कि यह चक्कर किसी तरह खत्म हुआ—जमीन खरीदने वाली कोआपरेटिव सोसाइटी ने बरसों तक उनके रुपये का ब्याज खा कर, आखिर जमीन खरीद ही दी और ठेकेदार ने भी सीमेंट में अठगुनी बजरी मिला कर उनका मकान बनवा ही दिया, पंडित जी ने भी ग्रहों के साथ काफी धक्का-मुक्की कर के ग्रह-प्रवेश की भी ऐसी साईत निकाल दी, जो बाबू रामसरन के रिटायर होने से पहले पड़ती थी। रिटायर होने की कार्यवाही पूरी होते-न-होते रामसरन जी अपने नये घर में आ गये।

रामसरन जी की जिन्दगी का छकड़ा उम्र के पचपनवें मोड़ पर क्या मुड़ा, कि जैसे रुक ही गया। अच्छा बड़ा मकान और वे उसमें अकेले ही पड़े रहते। वैसे उनका कुनबा भी छोटा न था। दो लड़कियां थीं, पर उनके विवाह हो चुके थे। बड़ा लड़का बनारस में नौकरी करता था। उससे छोटा बंगलोर में। सबसे छोटा लड़का कलकत्ते के स्टेटिस्टिकल इंस्टीट्यूट में अभी पढ़ रहा था। पत्नी बनारस में बड़े लड़के, बहू, पोते और पोतियों की देख-भाल और साथ-साथ काशीवास कर रही थीं। इस तरह इतना बड़ा कुनबा होते हुए भी बाबू रामसरन बिल्कुल अकेले रह गये थे। 'पानी में मीन प्यासी' शायद कबीरदास जी ने कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में कहा होगा।

नये मकान में सामान रखवाने की यत्किंचित व्यवस्था भी रामसरन जी के ही सिर पड़ी, क्योंकि उनकी पत्नी अभी आ नहीं सकती थीं—बड़ी बहू का पांव भारी जो था।

सामान को इधर-उधर करते रामसरन जी थक गये। बैठक में आराम कुर्सी खींच उस पर अधलेटे से पड़ गये वह।

बड़ी दूर से आती हुई-सी एक आवाज सुनाई दी—"मैं चाहती हूं कि जब तुम थक कर आराम कुर्सी पर लेटो, उस समय मैं आकर शाल तुम्हारे चारों ओर लपेट दूं और मफलर देती हुई कहूं—ठीक से बैठो। ठंड न लग जाए—"

रामसरन जी ने चौंक कर आंखें खोल दीं। स्मृतियों में गूंजती आवाज ही एक चीज है, जिसे समय की दूरी हल्की नहीं बना सकती। उन्होंने गहरी सांस खींची, और पास की मेज पर रखी आज की डाक उठा ली।

अखबार में प्रकाशित उनके विज्ञापन के उत्तर में आयी डाक थी—कई दिनों से आ रही थी। उनका सबसे छोटा लड़का मदन होनहार था। एम० ए० करने के बाद—स्टेटिस्टिकल ट्रेनिंग ले रहा था। गजटेड बाप का बेटा था इसीलिए कन्याओं के पिता दनादन पत्र लिख रहे थे।

एक पत्र एक बिजनेस-मैन का था। उनकी लड़की सुन्दर और सुशील थी। इंटर पास थी। घर का व्यापार था कोई तीन हजार रुपये महीने का लिखने वाले ने टाइप-राइटर पर ३००० की रकम लाल रिबन में टाईप की थी।

एक रिटायर्ड गजटेड अफसर का पत्र था, जिनकी लड़की एम० ए० थी। दो भाई गजटेड अफसर थे। 'डीसेंट' शादी करने को तैयार थे वे सज्जन।

रामसरन जी मुस्कराये। लोग लेन-देन की कितनी ही बुराई करें, वह दूर नहीं हो सकता। लोग जब मासिक आय या गजटेड बाप भाई का जिक्र करते हैं, तो मतलब ही यह होता है, कि अच्छे दहेज की सम्भावना है। तभी एक पत्र और निकला, जिसे पढ़कर रामसरन जी फड़क गये। यह पत्र मधुसूदन जी का था। उस जमाने में वे अण्डर-सेक्रेटरी थे, जब रामसरन जी असिस्टेण्ट ही थे। आजकल डिप्टी सेक्रेटरी थे। रामसरन जी अण्डर सेक्रेटरी के पद से रिटायर हुए थे। कनौजिया लोगों में लड़के कम मिलते थे। मधुसूदन जी ने लिखा था—'मैं मदन को अपना पुत्र बनाना चाहता हूं और कमला को आपकी पुत्री। आप जानते ही हैं कि वह मेरी इकलौती बेटी है।'

रामसरन जी गद्‌गद् हो गये थे। मधुसूदन जी को वह अच्छी तरह जानते थे। बड़े आदमी थे, बड़े पद पर थे। कमला को भी उन्होंने देखा था। तब तो खैर वह छोटी थी। इण्टर की परीक्षा दी थी उस साल। अब तो एम० ए० में है। उनके मन में भी कमला और मदन की जोडी उभरी थी, मगर कुछ सोच कर रुक गये थे। ऐसे मामलों में खुद बात चलाने से घाटा ही रहता है।

उन्होंने दराज में से कार्ड निकाला और मधुसूदन जी को लिखा—"मुझे इस सम्बन्ध से बड़ी खुशी होगी। शीघ्र ही घर में सलाह करके लिखूंगा।"

रामसरन जी की तन्दुरुस्ती साथ नहीं देती थी। इतने पत्र पढ़ने से ही थक-से गये वह।

"सोमू! एक गिलास पानी ला। और यह चिट्ठी डाल आ।"—उन्होंने नौकर से कहा।

सोमू पानी देकर चिट्ठी डालने चला गया।

रामसरन जी यह सोचकर मुस्कराये कि, 'चलो, मदन की शादी भी कुछ कम नहीं रहेगी।' उन्हें याद आया कि उनका मझला लड़का बिल्लू—वे तो बिल्लू ही कहते हैं, दुनिया भले ही उसे बलराम कहती रहे—बड़ा चट है। वे उन दिनों सेक्शन आफिसर मात्र थे, मगर बाबू ज्योतिप्रसाद पर वह रंग जमाया था बिल्लू ने कि अपने बाप को डिप्टी सेक्रेटरी बता दिया था। इधर की बात उधर मिलायी, और आखिर शादी कर ही डाली थी। असलियत तो ज्योति प्रसाद जी को तब मालूम हुई थी, जब लड़की फिरौती पर लौट कर गयी थी।

रामसरन जी ने सोचा कि शादियां सभी अच्छी रहीं। बड़ा लड़का उन दिनों ब्याहा गया, जब वे कुछ खास नहीं थे, मगर फिर भी उस जमाने में बहुतों से अच्छी रही थी उसकी शादी। रामसरन जी का सिद्धांत था कि लड़के की शादी करनी हो, तो अपनी हैसियत असलियत से बढ़ा-चढ़ा कर बतलाओ और लड़की की शादी करनी हो, तो इतने घटो, कि दूसरा पक्ष ज्यादा न मांग बैठे—मगर इतने भी मत घटो, कि वह शादी से ही इन्कार कर दे। हानि-लाभ पर सतत रहने वाली इस दृष्टि ने ही रामसरन जी को हमेशा फायदे में रखा था।

खुली खिड़की में से हवा का एक तेज झोंका आया, और मेज पर से चिट्ठियां उड़ कर नीचे गिर पड़ीं।

"ऊंह", रामसरन जी उठते हुए बड़बड़ाये—"खिड़कियों पर पर्दे भी लगवाने हैं। हवा बहुत परेशान करती है।"

"मैं चाहती हूं, कि चाहे थोड़ी ही आमदनी हो—कोई २०० रुपये, पर छोटा-सा घर हो बगीचे के बीच में, और खिड़कियों पर नीले पर्दे हों—हल्के नीले रंग के।" युगों पीछे से एक आवाज आयी।

रामसरन जी सकपका गये। आज क्या हो रहा है उन्हें? उन्होंने जल्दी जल्दी चिट्ठियां समेटीं, और कुर्सी पर आ बैठे। अरे, मदन बेटे की चिट्ठी तो उन्होंने देखी ही नहीं थी। उन्होंने कुर्सी की पीठ से कमर टिका दी और लिफाफा खोलकर चिट्ठी पढ़ने लगे :—

'पूज्य पिता जी,

प्रणाम। इस बार यह पत्र एक समस्या के बारे में लिख रहा हूं। बिना विशेष भूमिका के कहना चाहता हूं, कि एक लड़की है—कान्ता बनर्जी। मेरे साथ पढ़ती है। मुझे पसंद है। उसके पिता यहीं एक फर्म में क्लर्क है। मैं उससे विवाह करना चाहता हूं। विश्वास मानें, मैंने यह निर्णय किसी भावुकता से नहीं किया है।

आपका आज्ञाकारी
मदन।'

"आज्ञाकारी!" रामसरन जी बुदबुदाये—आज्ञाकारी का बच्चा! बाप फर्म में क्लर्क है—लड़की पढ़ती है! बेटा इश्क का मजा ले रहे हैं।

उन्होंने मदन की चिट्ठी एक तरफ फेंक दी। सोचने लगे, यहां डिप्टी सेक्रेटरी की इकलौती बेटी से शादी कराने का डौल में लगा रहा हू, और ये हजरत चले हैं क्लर्क की बेटी से ब्याह करने।"

रामसरन जी ने स्वयं क्लर्की से जीवन शुरू किया था। बेकारी और गरीबी की मार ही ऐसी थी, कि उन्हें जो नौकरी मिली, उसी को स्वीकारने पर विवश होना पड़ा। कालेज के दिनों के हवाई सपने शीशे पर जमी भाप की बूंदों की तरह उड़ गये थे। यही तो उन्होंने तारिणी से कहा था—"मेरा भविष्य अनिश्चित है। नौकरी मिले भी या नहीं, कुछ पता नहीं। जाने कैसे जिन्दगी तय करनी पड़े। तुम जैसी सुखों में पली एम. ए. पास लड़की को अपने जीवन से कैसे बाध लू?"

"हु," रामसरन जी ने अपना सिर झटका, जैसे स्मृतियों को झिटक कर दूर फेंक देना चाहते हों। आज तारिणी की याद क्यों बार-बार आ रही है? आराम कुर्सी—नीले परदे—हूं—!'

सामने फर्श पर किताबों का ढेर पड़ा था। रामसरन जी के व्यसनों में से एक था किताबें खरीदना। इसीलिए उनके सामान में किताबें ही अधिक थीं। 'इन्हें अलमारियों में ही लगा दिया जाए,' रामसरन जी ने सोचा। वे जान-बूझ कर अपना ध्यान स्मृतियों की फरफराहट की ओर से खींचना चाहते थे।

किताबें अलमारी में रखते हुए एक मोटी-सी किताब उनके हाथ में आयी। मजबूत जिल्द पर बहुत पुराना अखबार चढ़ा हुआ था और न जाने क्यों उसका कवर बड़ा गुदगुदा-सा लग रहा था। रामसरन जी की बूढ़ी उंगलियां उस गुदगुदी सतह पर दबीं, कि जैसे उन्हें बिजली छू गयी। उन्होंने

इधर-उधर चोर नजरों से देखा, कि कोई देख तो नही रहा है।

फिर उन्होंने धीरे-धीरे बढ कर कमरे के सब किवाड़ अन्दर से वन्द कर लिए। वे आराम-कुर्सी पर आ बैठे, किताब पर से अखबार का कवर उतार दिया उन्होंने। उनके सामने नीले और गुलाबी कागजो पर लिखे कई पत्र बिखर गये।

रामसरन जी ने एक भी पत्र उठा कर नही पढा। इन्हें उन्होंने इतनी बार पढा है, कि इनका एक-एक शब्द उन्हें याद है। बिना देखे वे बता सकते हैं, कि किस पत्र पर बत्तीस साल पहले की कौन सी तारीख पड़ी है।

"तारिणी मुझे पसद थी," रामसरन जी ने अपने मन के अन्तरतम में कही स्वीकारा। फिर उन्हें लगा कि यह तो किसी पंक्ति की अनुगूंज थी। हां, अभी मदन के पत्र मे पढा है यह वाक्य—'वह लडकी मुझको पसन्द है।'

रामसरन जी पीछे को उठग गये। तारिणी उनके कालिज जीवन मे जैसे सुगंधित हवा का एक झोंका थी, फिर पिता का डर—अन्तर्जातीय विवाह के प्रति उनकी साहस-हीनता, प्रेम-विवाह के बारे मे उनकी अपनी कमजोरी—एक रील-सी घूम गयी। रामसरन जी ने आराम कुर्सी पर ही करवट बदल ली।

आज से बत्तीस साल पहले वे भी ऐसा ही पत्र लिखने की स्थिति में आये थे, जैसा आज मदन ने लिखा है! मगर वे इस तरह का पत्र लिखने का साहस ही कभी न जुटा पाये। अगर जुटा ही पाते, तो क्या होता? पता नहीं!

रामसरन जी को अपनी जिन्दगी से शिकायत करने को कुछ नही था। वह जगह, जो तारिणी भरती, अनुराधा ने भरी थी। अनुराधा एक घरेलू लडकी—अनपढ तो नहीं कहा जा सकता, अधपढ भले ही कह लिया जाए उसे। सुन्दरता मे तारिणी से अधिक नही, तो कम भी नही थी। उस सुघड़ता में भले ही कम रही हो, जो कालेज की शिक्षा मे आती है। सेवा, संतान सभी कुछ अनुराधा ने उन्हें दिया था। मगर न जाने कहा एक अन्तर था, जो भर नहीं पाया था। अनुराधा उनकी सह-धर्मिणी बनी, सहचरी नही बन पायी थी। शायद शरीर के पास आयी थी, मन के पास नही पहुंच सकी थी। रामसरन जी के मन मे अपने प्रति कर्त्तव्य-बुद्धि तो वह जगा पायी थी, लेकिन प्रेम की अनुभूति नही जगा पायी। वह उनकी घरवाली तो बनी थी, मगर सच्चे अर्थो में पत्नी नही बन पायी—ऐसी पत्नी, जिसमें गृहणी और प्रेयसी मिल कर एक हो जाती है।

सोमू चिट्ठी डाल कर लौट आया। खिड़की से ही उन्होने देखा कि वह रसोई मे चला गया है।

"लो. मधुसूदन की चिट्ठी भी चली गयी,' रामसरन जी ने सोचा, बड़ी अच्छी शादी रहेगी। दहेज से घर भर जाएगा—घर में कमला—साक्षात् लक्ष्मी।'

कोने मे पड़ा मदन का पत्र हवा से उड़कर उनके पास आ गया। जैसे कुछ कह रहा था वह। यह हवा, यह चिट्ठी, और नीले परदे!

'नही, नहीं,' रामसरन जी ने सोचा, 'ऐसा अच्छा रिश्ता छोड़ा नहीं जा सकता।' मधुसूदन जी चाहेंगे तो मदन को किसी भी अच्छी नौकरी पर चिपका देंगे।

पिछले तीस वर्षों से रामसरन जी इस चिपकाने के बारे में कहते-सुनते आये है। उन्हें इसे याद करके ही बड़ा मजा आया।

रसोई-घर मे कुछ गिरा। रामसरन जी चौंक से पड़े। झट से पत्रों को किताब की जिल्द पर रखा, और अखबार चढाने लगे। सोमू ने कुछ पटक दिया है, जा कर देखना होगा। मदन की मां भी अजीब है। खुद जा बैठी बनारस और मुझ बूढे को छोड़ गयी इन जंगली जानवरो को सरकस की ट्रेनिंग देने के लिए!

एक पत्र मे लगी पिन रामसरन जी के हाथ मे चुभ गयी। चौंक कर उन्होने उधर देखा—एक नीला पत्र। बिना देखे ही वह यह बता सकते थे कि वह उन पत्रो में अंतिम था। उसमे तारिणी ने विदा लेते हुए लिखा था:

> 'हम दोनों के मार्ग आज से जुदा हो रहे है। कौन जाने फिर कभी ये रास्ते मिले भी या नहीं। मैं चाहती हू—मगर मैं क्या चाहती हूं, इसका सवाल ही क्या है।'

हा, कोई क्या चाहता है। इसका सवाल ही क्या है?

वह हम क्यों नही कर सकते, जो हम चाहते है? खास तौर से तब, जब उसे कर सकना अपने ही हाथ मे हो? अब मदन ही चाहे, तो क्यो शादी नही कर सकता? कौन जाने कर ही ले। और कौन जाने, मेरा आज्ञाकारी बन कर वह शादी न ही करे। और—और—!

रामसरन जी बत्तीस साल आगे की बात सोचने लगे, जब एक बूढ़ा उनकी ही तरह आराम-कुर्सी पर से उठेगा—और एक किताब अलमारी में दूसरी किताबो के पीछे की तरफ को छिपा कर रखेगा—एक ऐसी किताब, जिस का कवर न जाने क्यो गुदगुदा-सा होगा—जैसे स्मृतियो की भुरभुरी सतह पर यथार्थ का सख्त पलस्तर कर दिया गया हो और वह दब-दब जाती हो। वह बूढा भी इसी तरह अलमारी बन्द करेगा, जैसे वे कर रहे हैं। और उसके हाथ भी किवाड़ के ताजे पालिश मे चिपक जायेंगे, जो उस समय सूखा न होगा! और—और—और—

रामसरन जी ने निश्चय कर लिया, कि उनकी तरह लौट कर, वह इस तरह निराशा में भरा-सा. आराम-कुर्सी पर नहीं बैठेगा। नहीं, उसकी शाल ओढ़ाने वाली उसके पास होनी चाहिए। वह, जो नीले परदे पसंद करती हो वह, जिसके पत्र किताबों की जिल्द में छिपाये न जाते हों, बल्कि रेशमी रूमाल में लपेट कर संदूक की तली मे रखे जाते हो !

उन्होंने एक कार्ड और निकाला। उस पर मदन को विवाह की अनुमति भी लिख दी। फिर सोमू को बुलाया। वह चिट्ठी लेकर चलने लगा, तो *उन्होंने उसे वापस बुलाया, और नीचे लिखा—*

पुनश्च:—'अपना नया मकान है न, जब आओ तो उसके परदो के लिए नीला कपडा लेते आना। नीले परदे बड़े अच्छे रहते है।'

उन्हें यह भी खयाल न आया, कि मदन के समझ मे यह सब कैसे आएगा कि उन्होने नीले परदे दिल्ली से खरीदने के बजाय कलकत्ते से क्यो मगाये हैं !

पहाड़ी अंधेरा

☐ कुन्तल कुमार जैन

रेलगाड़ी दौड़ रही थी। उसने खिड़की के बाहर गर्दन निकालकर देखा इंजन मोड ले रहा था। अब उसे पूरी रेलगाड़ी दिखाईदे रही थी। उसे लगा की यह गाड़ी न होकर डिब्बो का एक जुलूस है...जुलूस जिससे वह बराबर नफ़रत करती आयी है। इस जुलूस से अगर डिब्बे विद्रोह कर दें तो कल अखबारो मे एक दुर्घटना जन्म ले सकती है। 'विद्रोह को दुर्घटना कहा जायेगा' यह सोच उसे आघात-सा लगा। लेकिन...लेकिन इन डिब्बों के विद्रोह से उसका अस्तित्व भी खतरे में पड सकता है, जान तक हाथ से निकल सकती है। उसने निश्चय किया कि विद्रोह को विद्रोह कहा जाये तो वह अपनी जान को हाथ से जाने देने के लिए तैयार है। हाथ मे निकल जाती हुई जान का अनुभव कैसा होता होगा उसने किसी कवि की तरह शब्द ढूंढा...मृत्यु-बोध और संत्रास। उसने सोचा वह विचारो की अंधी घाटी की ओर बही जा रही है...उसने निश्चय किया कि ऐसा नही होना चाहिए, कतई नही।

वह अब उदास हो चुकी थी और खुश होने के किसी क्षण की तलाश में थी...तलाश...तलाश और तलाश; कितना टूट जाना पडता है। समय भाग जाता है और हथेलियां उन्ही रेखाओ के साथ देखी जा सकती है, खाली... खाली और शून्य...। शून्य की खोज कितनी देर बाद हुई होगी और आदमी एक से नौ तक गिनकर ठहर जाता होगा। इतनी कम संख्याओ से उसका काम कैसे चलता होगा और अब तो संख्यायें प्रकाश वर्षों मे चल गयी है। प्रकाशवर्षों के बारे में सोचते-सोचते उसे [illegible] मे एक [illegible] हुए कई आदमी याद आने लगे। अन्तरिक्ष [illegible] क पक्ष [illegible] के द्वारा दूसरे पक्ष के मनुष्यो को खा [illegible] थी। उसने अपने आस-पास सिगरेट [illegible] यह धुआ सामने बैठे आदमी के मुह से न [illegible] सुलग रहा है। जीवित आदमी सुलगने [illegible]

लगा...और रूसी बख्तरबन्द टैंको का जुलूस...। जुलूस जिससे वह घृणा करती है। उसके दिमाग में तनाव बढ गया। उसने इन कविता पंक्तियों को दोहराया 'चेहरे साफ सुथरे है, नीयत अंधी है।'

कैसा वक्त आ गया है। पहले उसे रोमानी कवितायें और गीत अच्छे लगते थे। गजले सुनने की इच्छा रहती थी लेकिन अब वह इन सबसे बचना चाहती है। अब जब वह किसी कवि-सम्मेलन का विज्ञापन देखती है तो उबकाई-सी आने लगती है और गीतों को पत्रिकाओं मे छपा देखकर उन्हें बाहर उठा फेकने की इच्छा हो आती है। प्यार, स्नेह और ममता जैसे शब्दों मे भी तो सूराख पड़ गये हैं। सम्बन्धों मे विघटन कितना तेज हो गया है। थोडे वर्षों मे तो कुछ साबित नहीं बचेगा। सम्बन्धो की आवश्यकता ही क्या है ? पहले भी आदमी अकेला था, फिर समूहों मे आया अब फिर अकेला होने के दौर मे आ पडा है। अकेला होना अब पुराने ढग से नही रह गया कि जगल मे जाया जाये। अब अकेला होना तमाम चीजो से घिरे होकर अलग हो पड़ने की विवशता है। ऐसा नही है कि अकेला होने के खतरो मे उसका परिचय नहीं है बल्कि जुड़ने में उससे भी ज्यादा भयकरता है जो अस्तित्व को समाप्त कर देने मे भी नहीं हिचकती, विवाह भी तो जुडना ही है जो अनुराधा के साथ कितना त्रासमय हो गया था। एक नौकर की तरह दिन भर, एक काम से छूटकर दूसरे काम मे जा चिपकना, पति के साथ बॉस जैसा सम्बन्ध और बच्चे पैदा करने की मशीन बन जाना...केवल अपनी कोमल-सी देह मे कुछ सख्ती और सघर्ष महसूस करने के लिए...उसने जल्दी से अग्रेजों के एक शब्द का अनुवाद करते हुये मन ही मन कहा... सम्भोग। 'ग' का उच्चारण करते-करते उसके होंठ खुले-से रह गये थे। इन खुले हुए होंठो की स्थिति से उसे परेश की याद आ गयी जो इसी स्थिति मे उसे अकेला पाकर चुम्बन मे फास लेता था। इस मीठे अकेलेपन से उस कडवे अकेलेपन की यात्रा को वह याद करना नही चाहती। दु ख की याद तब तक कभी मीठी नही होती है जब तक उसमे घृणा का ताप रहता है। ताप...ताप और ताप, अपने ही ताप मे जलना।

'जलना' शब्द को होंठो मे बुदबुदाते हुए उसे वियतनाम याद आ गया और बमो के धड़ाको के साथ चीथडे-चीथडे होकर उडते हुए शरीर। शान्ति की रक्षा के लिए युद्ध। कितनी मॅंहगी हो गयी है शान्ति और सुरक्षा मनुष्य के लिए। अब उसे शान्ति याद आने लगी जिसने खेतवाडी में शुरू किये प्यार को गोली मारकर पेडर रोड पर रहने वाले उस युवक की रखैल बनना सहर्ष स्वीकार कर लिया जिसका परिचय बंगलों और कारो से शुरू होता है। वह जब भी उससे मिलती है उसे अपने फ्लैट पर आने का निमन्त्रण अवश्य देती है जो उसे हमेशा असम्मान लगा। इसलिए वह उसे स्वीकारने से बराबर हिच-

छिपाती रही है। लेकिन हिचकिचाना नहीं निर्णय लेने से...शायद आज दायित्व की परिभाषा यहीं से शुरू होती है जो चुप रहने के लाभ से जुड़ती है या उससे कम से कम कोई हानि तो नहीं होती। हानि और लाभ के गणित से सुविधा इकट्ठी की जा सकती है। सुविधाओं से घिरा हुआ आदमी ही आज महत्वपूर्ण है, भले ही वह भीतर से चुका हुआ हो।

उसने हल्का-सा सिर-दर्द महसूस किया। उड़ते बालों को कानों के पीछे मोड़ने की कोशिश की लेकिन हवा एक अस्त-व्यस्तता चाहती थी। अस्त-व्यस्तता से उसे अब तकलीफ नहीं होती है। उसकी धारणा बन चुकी है कि चीजों को कितने ही सीधे और सही तरीके से रखो वे अपने आप उलट जायेंगी, एक भूकम्प हर जमीन के नीचे महसूस किया जा सकता है। उसने कविता जैसा कुछ कहने की कोशिश की लेकिन शब्द व्यवस्था में नहीं आये। व्यवस्था शब्द आते ही उसे थकावट-सी आने लगी। उसे लगा कि हर चीज धीरे-धीरे जम रही है। एक धक्का हल्के मुक्के-सा लगा जैसे परेश...उसने इस शब्द को चेहरे पर आकर बार-बार बैठती मक्खी की तरह खिड़की से बाहर कर दिया।

गाड़ी किसी स्टेशन पर खड़ी हो चुकी थी और प्लेटफार्म का शोर डिब्बों की ओर बढ़ आया था। कुछ लोग उतर रहे थे खाने-पीने की चीजें लेने। उसे चाय पीने का मन हो आया किन्तु स्टेशन पर की घटिया चाय का ख्याल आते ही उसने इरादा छोड़ दिया। गाड़ी-स्टेशन छोड़ती हुई तेज हो रही थी। उसे लगा रेल के पहियों की तरह सरदर्द उसके माथे में दौड़ रहा है। दौड़ने से गिरने का खतरा रहता है लेकिन जहां गिर जाओ उसे अपनी उपलब्धि मान लो।

अब वह खिड़की के बाहर एक पर्वत तथा भागते हुए पेड़ों, खम्बों और दूसरी चीजों को देख रही थी। चीजें भाग रही हैं, उल्टी होकर तेजी से। तेजी और मंदी का उसने अर्थ निकाला, मंदी का विलय तेजी में हो गया है और तेज हो जाना यानी धारदार हथियार बन जाना मनुष्य के विरुद्ध है। आज है मनुष्य के विरुद्ध पूरी भेड़िया सभ्यता और उसका चिंतन। सारा जीवन चरवाहा बनने की कोशिश में एक षडयंत्र-रचना। राष्ट्रीयता, मानव मूल्य, समाजवाद, अहिंसा और प्रेम जैसे नारों के पीछे कितने घिनौने और हत्यारे चेहरों की दुनिया है। उसने एक छटपटाहट और भीतर तक महसूस की। अब वह पानी पीना चाहती थी। उसने सीट के नीचे से सुराही निकाल पानी पिया और कुछ राहत महसूस की जिसे दूसरे ही क्षण डिब्बे में भीड़ ने घुस-कर घुटन में बदल दिया। छोटे-छोटे सुखों की क्षणभंगुरता...उसने आगे सोचना स्थगित कर दिया। किसी ने रेडियो बजाना शुरू कर दिया था और

कोई फिल्मी गीत उसके कानों में घुसने के प्रयास मे सफल हो रहा था। उसे लगा कि लगातार रेडियो से संगीत फेंका जाना, देश मे बढते हुए असन्तोष को बुलावा देने की चाल है। क्या इतने अधिक मनोरंजन की आवश्यकता मनुष्य को है? नहीं! यह असन्तोष की ओर उसकी पीठ करवाना है। पीठ पर पेपरवेट, यानी आदमी एक मेज और लोग उस पर लिखना चाहते है। पेपरवेट भी कितने डिजायनो और रगो के बनाये जाते हैं जिनमे फूलों से लेकर अमूर्तता की कला तक के दर्शन किये जा सकते है।

उसे एक चित्रकार का एक चित्र याद आने लगा जिसमें एक स्त्री-योनि मे से बडी भारी सख्या मे लोग बाहर आ रहे हैं यानी बाहर आने का सकट। कितनी तेजी से पृथ्वी पर जंगलो और जानवरो की संख्या में कमी हो रही है। शायद सभी जानवर मनुष्य बनकर पृथ्वी पर आ गये है।

उसने अपने आप को आवेश मे महसूस किया। तय किया कि प्रधानमन्त्री को लिखेगी कि देश के नीचे कुछ पहिये लगा दिये जायें और उसे तेजी से जहन्नुम की ओर धकेल दिया जाये।

रेल अब आधे मिनट के पहाडी अंधेरे में चली गयी थी और उजाले के दूसरी ओर निकल आयी थी। यह शायद तीसरी या चौथी बार हुआ था। फिर अब पहाडी अंधेरे में। उसने सोचा यह पहाडी अंधेरा लम्बा है। डिब्बे में गहरा अंधेरा और बाहर भी। उसे लगा वह संकट मे है। डिब्बे के तमाम पुरुष उस पर बलात्कार कर सकते है। उसके कपडे फट कर चीथड़ो में परिणित हो सकते हैं, चोली और पेटीकोट के टुकड हो सकते है। वह भय से थर्रा गयी। उसने अंधेरे मे सोचा कि कई हाथ अभी बढ आयेंगे। गाडी अभी भी पहाडी अंधेरे मे दौड रही थी। वह दूसरे डिब्बो से स्त्री-चीखो की प्रतीक्षा करने लगी। उसे रवीन्द्र स्टेडियम मे भागती हुई औरते दिखाई देने लगी। वह भी तो उस रात वही थी किन्तु साफ बच निकली थी, बिल्कुल साफ तो नही—उसके ब्लाऊज पर भी कोई हाथ आ पड़ा था और कोई पेटीकोट खीच रहा था। साड़ी का कोई हिस्सा फटकर उससे अलग हो चुका था। पर वह भागने मे सफल हो गयी थी। कितने योजनाबद्ध ढंग से सब हुआ था। कही कोई दिक्कत नही आयी। डिब्बे में अंधेरे का दबाव बढ गया था। गाड़ी तेज रफ्तार मे दौड़ रही थी। शायद दो मिनट बीत गये थे और तीसरा आधे से अधिक...अब अंधेरा हल्का होना शुरू हो गया था...चौथा मिनट समाप्त होते-होते गाडी धूप में प्रवेश कर चुकी थी...उसने चैन की सांस ली। अच्छा हुआ अंधेरा घटनाहीन गुजर गया। घटनाहीनता ने उससे कहा लोग अभी सभ्य है। उसने प्रश्न किया, सभ्यता के विरुद्ध या सभ्यता के समर्थन मे?

चरम-बिन्दु

□ मणिका मोहिनी

वेटुल को नागपुर हॉस्टल मे छोड मैं उदास लौट रही हूं। सबसे छुपकर आखो को कोरे रूमाल से पोंछ लेती हूं। मेरा अब कौन है बम्बई मे? नागपुर प्लेटफार्म पर दादर एक्सप्रेस की प्रतीक्षा करती हुई मैं पतझर के पत्तों सी टूट-टूट कर बिखर रही हू।

गाडी अपने समय पर आ लगी है। फर्स्ट क्लास के लेडीज कूपे में मैं अकेली हू—शुक्र है। टिकट दिखाने की रस्म अदा कर मैंने कूपे का दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। मैं कटे पेड सी टूट कर गिरी हूं बर्थ पर। यह मैंने क्या किया? अपने पांवों पर स्वयं कुल्हाडी मार ली। न मैं महाराष्ट्र में आती, न वेटुल का इजीनियरिंग मे एडमीशन होता, और न वह मुझसे दूर जाता। कसूर मेरा ही है। मैंने ही उसके दाखिले के लिए आकाश पाताल एक कर दिया था। किस तरह चार दिन कालेज के प्रिंसिपल और सलाहकार समिति के इर्द गिर्द चक्कर काटती रही, किस तरह मैं उनके सम्मुख यह सिद्ध करने पर तुली रही कि इस विशेष कॉलेज में स्थान मिले बिना वेटुल का पूरा भविष्य ही चौपट हो जाएगा। पूरी उम्र दिल्ली मे गुजारने के बाद एक महीने की बम्बई की नौकरी मे किस तरह अपने को महाराष्ट्र का डामिसाइल साबित किया। उस समय मुझ पर वेटुल की पढाई क्यों इतनी हावी हुई कि मै अपने नितान्त अकेले हो जाने का पूर्वाभास नही कर सकी?

"तुम अकेली कहा हो मम्मी? मैं हू ना हर घडी तुम्हारे पास।"

वेटुल, तू कहाँ से बोला? तू सच बता बम्बई मे रहना चाहता था? तुझे समुद्र ने खीचा था। तू समुद्र के इस शहर में रहना चाहता था एक बार मैरीन ड्राइव पर घूमते हुए जब हम नरीमन प्वाइंट की ओर बढे थे, तब तू बोला था, जैसे खुद से कह रहा हो—"एकदम खुला फैला विस्तार, पानी के साथ-

साथ चलते हम।" ये दो टुकड़े बोला था तू। मैंने हंसकर तुझसे कहा था—"वेटुल. तू तो कविता करने लगा।" तूने जैसे नही सुना था। तू समुद्र की ओर देखता हुआ जैसे कही खोया हुआ था।

गाड़ी रात के अंधेरे मे भाग रही है। मेरा दिमाग बन्द क्यो नहीं होता क्यों एक बेचैनी मे उठ बैठ रही हू ? क्यो लग रहा है कि बेहद अकेली हू ? क्यो कोई भी सुख पूरा नही लग रहा ?

आते हुए गीताजलि मे हम कितने चहकते हुए आये थे। उस समय एक उपलब्धि का एहसास था।

"चालीस गाव, जलगाव, शेगांव, नान्दगाव, लालसगांव, उगांव...मम्मा सारे गांव ही गाव है इस रास्ते मे।"

वेटुल का जिज्ञासु मन हर चीज ग्रहण करने को तत्पर, कही से कुछ छूट न जाए। बढती हुई उम्र की उमगो मे भरा पूरा।

"देखो, पीछे से रोना नही", मेरा बुजुर्ग बन कर मुझे समझाता हुआ, आत्म निर्भर, आत्म विश्वास से पूर्ण। मां की जरूरत केवल भावात्मक तृप्ति के लिए। अकेले दुनिया को सिर पर उठा लेने का मोह। कुछ कर दिखाने जैसी जिद। हर काम अपनी तरह से करने का किशोर लोभ। जूझने को कुछ तो मिले...मर्दानगी की ओर बढता हुआ रुझान।

गाड़ी दादर पहुंच गई है। कही बाहर से लौट कर घर पहुचने जैसा सुख जिस तरह दिल्ली मे मिलता था, वह यहा महसूस नही हो रहा। अभी शहर पराया है।

मैं प्लेटफार्म बदल कर सान्ताक्रूज के लिए लोकल गाडी मे बैठती हू। भीड धीरे-धीरे बढ रही है। "इतनी भीड मे हम अकेले" वाले रोऊं-रोऊं अहसास से वेटुल के बडा होने ने छुटकारा दिला दिया था। बडी मस्तीभरी जिन्दगी थी "दम मे दम फिक ना गम" वाली। लेकिन वेटुल हॉस्टल चला गया है तो क्या रखा है मेरे लिए बम्बई मे कही भी।

मैं अपने कमरे मे अटेची रख कर लुढक गई हूं। नेहा मेरे पास आ बैठी। उसने आया को आवाज लगाकर चाय मगवा ली है। मेरे और वेटुल के लिए बिछी दो चारपाइयो के बीच दो छोटी मेजे लगी है। मेरी तरफ वाली मेज पर फोन है दूसरी मेज पर चाय की ट्रे। मैने फोन उठाकर दिल्ली के नम्बर घुमाने शुरू कर दिये है—संदीप, रोहिणी, सारिका, दीप्ति, पिता, भाई, बहन—और भी न जाने कौन-कौन। एक-एक कर सब बधाइया दे रहे है—मैं अकेली हो गई हूं—कोई ध्यान भी नही दे रहा।

फोन करने के पीछे मेरा उद्देश्य क्या था ? क्या अपने अकेलेपन का रोना रोना ? नेहा को कभी अकेलापन नही लगता। नेहा कभी दिल्ली मे किसी को फोन नही करती। मैं हैरान हूं। किया था एक बार उसने अपने

माता-पिता को। एस. टी. डी. न मिलने पर ट्रंक काल बुक करवाया था और बस। मैंने नेहा से यही बात पूछी है, तो उसने मुझे चाय का प्याला थमाते हुए अकड़ कर कहा है "मैं किसी से इतना मोह नहीं पालती"।

उसके ऐसा कहते ही मैंने फोन नीचे रख दिया। क्या मोह पालने से पलता है ? नेहा मेरेरुग्रामे मन को उपदेशों की सेंक देते हुए चाय की चुस्कियां भर रही है। एक क्षण के लिए मुझे लगा जैसे वह मेरी गुरु हो और मैं पूर्ण शिष्या भाव से उसके प्रवचन सुनने लगी।

मोह के धागों से तुम कितना बंधी हो ? इन्हें तोड़ो वन्दना, अन्यथा ये तुम्हें तोड देंगे। तुम्हारा बेटा इंजीनियरिंग पढने गया है कुछ बनने गया है, और तुम यू रो-रो कर बेहाल हो रही हो। क्या तुम जानती नहीं कि तुम्हारे आसुओं की आवाज बेतार के जरिए उस तक पहुच कर उसे भी परेशान कर रही होगी। जिनसे हम प्यार करते है, उनकी खुशी, उनके सुख की खातिर हमें सिर्फ त्याग करना होता है। अब तुम सब्र से उस दिन की प्रतीक्षा करो जब वह..."

"मेरा नाम करेगा रोशन, जग मे मेरा राजदुलारा। लेकिन नेहा उसकी उन्नति मे मेरा कितना-कितना अकेलापन जुड़ा हुआ है। क्या वह मेरे पास रहकर कुछ नही बन सकता था ? क्या इंजीनियरिंग पढे बिना वह उन्नति नही कर सकता था ?"

"यह तुम्हारा स्वार्थ बोल रहा है। इसकी आवाज मध्यम करो। तुम कितनी स्वार्थी हो जो अपने बेटे की उन्नति मे बाधा बनना चाहती हो।"

"मैं और स्वार्थी ? उससे अलग मैं क्या हू नेहा ? कुछ नही...कुछ नहीं ...और फिर मेरे आंसू जैसे टपकने को हुए और मैंने तकिये मे अपना मुह छिपा लिया।

"देखो अगर तुम रोईतो मैं अपने कमरेमें चली जाऊगी" उसने प्यारभरी धमकी दी लेकिन मैं सचमुच घबरा गई, "नही—नही—बैठो यही तुम—" कहकर मैने उसे पास पडी कुर्सी से खीच कर अपने पलंग पर बैठा लिया।

एक कमरा क्या, चार कमरो का यह पूरा फ्लेट उसका है, जिसमे वह अकेली रह रही है और मै अब उसकी सिर्फ पेइग गेस्ट नही बल्कि मित्र भी हू, वह और मैं दोनों समझती है।

□

दफ्तर 'ज्वाइन' करने के पहले दिन ही मुझे सहकर्मियो ने बताया था "आपकी दिल्ली से ही एक और अधिकारी आई हैं। कमरा नं. पाच मे है। आप चाहे तो उनसे मिल लीजिये।"

मैंने कमरा नं. पांच का दरवाजा खोला तो एक बहुत ही परिचित चेहरा वहां बैठा पाया। मैं एकाएक याद न कर पाई कि इस चेहरे को कहां देखा है लेकिन देखा जरूर है, बहुत नजदीक से और बहुत बार।

"आइए, एकदम भावशून्य चेहरा और दफ्तरी आवाज। मैं कमरे में घुसी तो उसने उसी औपचारिकता से मुझे हाथ से सामने रखी कुर्सी पर बैठने का संकेत किया और पूछा "कहिए"

"मैंने आज ही यहां पदभार संभाला है। मैं दिल्ली से आई हूं। आप भी..."

"हां, मैंने एक माह पूर्व यहां ज्वाइन किया है।"

"ऐसा लगता है, आपको दिल्ली में कहीं देखा है। दिल्ली में आपका आॅफिस कहां था ?"

"आर. के. पुरम।"

"हां मेरा भी वहीं था। शायद वहीं आपको कभी देखा हो," मैं उत्साह में भर आई थी लेकिन वह शान्त, चुप, मुझे कतई लिफ्ट न देती हुई।

मैं अपने उत्साह को दबाते हुए चुप हो गई। वह भी कुछ न बोली। उस चुप्पी का अर्थ था—मुझे उठ जाना चाहिए मैं सिर्फ मिलने आयी थी मिलना हो गया है, अब कोई बात आगे बढ़ने के लिए नहीं है।

उसे दिल्ली से आई जानकर ही मेरी उसमें रुचि हो गयी थी। बम्बई अनजाना शहर, हम दोनों एक ही शहर की, दिल्ली की, यह बात हम दोनों को जोड़ने के लिए काफी होगी। यह मैंने सोचा था। उसने नहीं।

उसने अपने सामने रखी फाइल की ओर देखते हुए हाथ में पकड़े पैन को हिलाना शुरू कर दिया था। जैसे पैन से खेल रही हो या यह मेरे लिए जाने की घंटी थी ? कम से कम यही पूछ ले कि मैं कहां ठहरी हूं ? आखिर मैं भी दिल्ली से आई हूं। लेकिन नहीं। मुझे लगा वह जिद्दी है, बेहद घमंडी, किसी को मुंह नहीं लगाती। लगाती भी होगी तो मुझे क्या मालूम, लेकिन मुझे पूछना है कि वह कहां ठहरी है ? एक महीना उसने कहां रहकर निकाला ? और मैं पूछ लेती हूं कि वह कहां रह रही है ?

"मेरी पोस्ट के साथ क्वार्टर अटैच्ड है। मैं सान्ताक्रूज में हूं, टाईप डी में।"

एकदम मेरा जरूरतमंद व्यक्ति जैसे जाग उठा—कोशिश कर देखो यदि इसके साथ कहीं कोई जुगाड़ बैठ जाये तो। सरकारी क्वार्टर का क्या भरोसा कब मिले।

"क्या आप मुझे अपने साथ रख सकती हैं ? मैंने ऐसे संकोच के साथ पूछा जैसे मैं कोई चीज होऊं जिसे वह उठाकर रख सकेगी।

"क्या आप अकेली हैं ?"

"नहीं, मेरा बेटा साथ है, बेटुन की उम्र उसे बताते हुये मुझे थोड़ी आशा बंधी, बहुत छोटा बच्चा होने से शायद वह हां न करती—बच्चे के रोने-धोने ...गन्दगी...अब शायद हां कर दे। लेकिन उसने मेरी आशाओं को तोड़ते हुए कहा, 'आय एम सॉरी, योर सन इज ग्रोन अप।"

"ही इज ओनली सेवेन्टीन..."

"ओह नो—ये टीनेजर लड़के...सब देखते समझते हैं, औरत को औरत महसूस करने लगते हैं।"

"ही इज नॉट लाइक दैट।"

"प्लीज डोन्ट इन्सिस्ट..."

अब कुछ कहने सुनने को नहीं रह गया था। मुझे उठना ही था। उठते हुए मेरे चेहरे पर जरूर शर्मिन्दगी रही होगी।

मैं स्वयं को कोस रही थी—ऐसे तो राह चलते लोगों को रोक-रोक कर पूछो, भाई हम आपके घर रह लें ? क्यों मैं उतावली हो गई ? छोड़ो मकान की चिन्ता अभी। और मैंने निश्चिन्त होने के लिए स्वयं को समझा लिया था।

तभी एक झटके से मेरे दिमाग में कौंधा—अरे उसका नाम नेहा है यह तो दिल्ली में मेरे ऊपर वाले फ्लैट में रहती थी। याद आया, एक बार लिफ्ट में बटन दबाने से पूर्व इसने मुझसे पूछा था, 'विच फ्लोर ?' तभी इतना अधिक जाना पहचाना चेहरा लग रहा था इसका। और उस दिन लॉन में रात के बारह बजे कैसी खोई-खोई खड़ी थी, जब मैं और बेटुन नाइट शो देख कर लौट रहे थे। हमें देखकर इसने टहलना शुरू कर दिया था। कितनी अकेली लगी थी यह मुझे उस समय, मुझ से भी ज्यादा ! और आज इसने मुझे पहचाना तक नहीं ?

पूरा मैंने भी कहां पहचाना था। पर मुझे लगा तो, मैंने कहा तो कि लगता है आपको कहीं देखा है। इसने कहा तक नहीं। इतना अभिमान ? इतनी एकान्तिका ? इसने सोचा होगा, दिल्ली में एक ही बिल्डिंग में रहकर कभी परिचित नहीं हुए तो यहां परिचय क्या बढ़ाना ?

दिल्ली की बात और थी। जहां हम रह रहे थे, उन ऊंची ऊंची बिल्डिंगों में सब अपने-अपने फ्लैट में मस्त थे, भरे पूरे, अड़ोस-पड़ोस से बेजार, अपना अपना मित्र समूह, ऐसे कि मर भी जाओ तो पड़ोसी शरीक होना जरूरी न समझे।

मर गया था ना वह हमारे साथ वाले फ्लैट का सुब्रह्मण्यम।

बिल्डिंग के चौकीदार जैकब ने एक दिन सुबह-सुबह दरवाजा खटखटाया था।

"मेमसाब, आप चल रहे। हैं लोहिया अस्पताल ?"

"लोहिया अस्पताल ?"

"आपके साथ वाले फ्लैट के मिस्टर सुब्रह्मण्यम का परसों शाम उनके आफिस में हार्ट-फेल हो गया।"

लो और मुझे पता तक नहीं-मैंने सोचा।

"दो दिन उनके सगे संबधियों की खोजबीन करते रहे, पर किसी के बारे में किसी को कुछ नहीं मालूम। लाश अस्पताल में ही है। आज श्मशान घाट ले जाना है। आप भी चलिए...।"

"हम ? हम क्यों जाएं ?"एकाएक मुंह से निकल पड़ा। मैं कुछ भी सोच नहीं पाई थी कि मुझे जाना चाहिए या नहीं। फिर बहुत संभल कर बोली थी, "देखो, मैं उन्हें जानती तक नहीं, कभी हैलो तक नहीं हुई, फिर मुझ महिला का श्मशान घाट जाना अच्छा नहीं लगेगा। तुम इस बाजू के बैनर्जी साहब को पूछो।"

"बैनर्जी बाबू चल रहे हैं, पर दो चार लोग तो होने ही चाहिए..."

"बाकी फ्लैटस के लोग..."

"सबने यही कहा, हम उन्हें नहीं जानते थे, उनके आजू-बाजू के लोगों को लो..."

ओफ ! यही नियति तुम्हारी होनी है, शत प्रतिशत यही वन्दना...वेट्ठल की यहीं कहीं बाहर नौकरी लगी और तुम्हारी मौत फ्लैट के भीतर हुई तो दिनों महीनों लाश सड़ेगी, किसी को समय पर खबर भी नहीं लगेगी कि तुम मर चुकी हो—सुब्रह्मण्यम् से बद्तर मौत मरोगी तुम, सुब्रह्मण्यम् फिर भी आफिस में मरा...

'चलो जैकब तुम, मैं अस्पताल पहुंचती हूं, दो चार लोगों को लेकर...'

☐

"हैलो रोहिणी—आधा-एक घंटे के लिए अपने को फ्री कर सकती हो ? —लोहिया अस्पताल पहुंचो...मैं वहीं मिलूंगी...मेरे एक पड़ोसी की मृत्यु हो गई है...उसका कोई नहीं है...।"

"हैलो संदीप—कैसे हो ? अजीब मुश्किल में फंस गई हूं...तुम लोहिया पहुंचो...मैं आ रही हूं, वहीं बताऊंगी—"

"हैलो ?—हैलो ?—रांग नम्बर—।"

हैलो—सारिका—यार वह मेरे बाजू वाला—दाईं ओर के फ्लैट वाला —वह मर गया—जरा आ जाना उसके मरने में—मेरे घर पहुंच तुरन्त...।

"—मेरा कुछ नही था उससे—समझना—बाकी बातें मिलने पर पूछ लेना—"

"हैलो ? परिमल ?—परिमल बोल रहे हैं ? आवाज पहचानी नहीं गई —रोहिणी ने फोन करके बता दिया ?—प्लीज पहुच जाओ—उस बेचारे की लाश को ठिकाने लगाने वाला कोई नही है। मजाक मत करो—वह उधर मरा पड़ा है और तुम यूं मजाक किये जा रहे हो—इतनी दुनियादार मे कब से हो गई ? —नही भई—दुखी भी कहां हूं—सुनो—रंजन को भी ले आना—"

बस काफी लोग हो गये। कधा देने को चार लोग ही चाहिए। कंधा कहा देना होगा लाश तो अस्पताल या श्मशान की गाडी में ही जायेगी।

तुम्हे भी सुब्रह्मण्यम् की मौत मरना है, वन्दना, तुम्हें भी—,

हाल मुरीदा दा कहना, मितर पियारे नूं। मितर पियारे, तुम क्यों याद आए इस समय ? हमने तुमने तो एक दूसरे को भूलने का वचन दिया था ? मितर पियारे, तुम जीत गए, मैं जब तब यूं ही हारती हूं, यूं ही मरती हूं।

यह मुझे क्या हुआ ? उधर लाश जलनी शुरु हुई थी, इधर मेरी दबी-दबी सिसकियों का बाध टूट गया। बहुत खुल कर जोर-जोर से रोने को मैं रोक न सकी थी। मेरे मित्र मुझे चुप कराते हुये आपस मे खुसर-पुसर कर रहे थे—

"इसने सुब्रह्मण्यम् से अपना अफेयर बडा छुपाकर रखा, हवा तक न लगने दी—"

"बहुत गहरी अडरस्टैंडिंग थी, तभी इतना रो रही है—"

"यार, लेकिन यह हो कैसे गया ? कभी कुछ नजर नही आया—कभी तो वह इसके घर बैठा नजर आता।"

"क्यो ? हो क्यो नही सकता दोनो के फ्लैट साथ-साथ, दोनो अकेले, रात को दोनो साथ रहते होंगे—"

"रहते नही, सोते—हा जी, रात को—" एक दबी सी हंसी।

मैं किसी को समझाने की मन स्थिति मे नही हूं। समझने दो जो समझते है। मैं रो रही हूं ढेर-ढेर—हिचकियो पर हिचकिया—सुब्रह्मण्यम्, तुम मेरे कौन थे ? क्यों मैं रोई तुम्हारे मरने पर इतना ? पर कहां—मैं तुम्हारे लिए कहा रोई ? तुम्हे जानती तक नही थी—तुम्हारा चेहरा तक याद नही—मैं तो अपने ही लिए रोई थी—अपने ही मरने पर रोई थी—

इन्ही फ्लैटम की उपज थी नेहा। सिर्फ नेहा नही, मैं भी।

बम्बई मे भी सुना था, यही फ्लैटस-संस्कृति है, इसीलिए बम्बई आते हुए कुछ कठिन नही लगा था। पर अभी नया शहर—और हम दोनो एक ही शहर की—दिल्ली की—

पांच नम्बर कमरे में नेहा से मिले दो दिन ही गुजरे थे कि एक सहकर्मी ने आकर बताया, "आप मिस नेहा को देखने गईं। वह अस्पताल में है।"

"अस्पताल में ?"

'हां, उनकी गर्दन के पास एक गांठ सी थी, उन्हें कैंसर का डर था, कल आपरेशन हुआ है सब ठीक है, उनका डर गलत निकला, ऐसा कुछ नहीं था—"

"लेकिन परसों तो मैं उनसे मिली थी, उन्होंने जिक्र तक नहीं किया—'

हमें भी कल ही पता चला। उन्होंने अपने माता-पिता को पत्र तक नहीं लिखा। किसी को घर में बुलवा लेतीं तो अच्छा रहता, यहां अकेली हैं, कोई अपना नहीं, और ऑपरेशन का नाम ही कुछ ऐसा होता है कि—आपको देखने जाना चाहिए...।"

"जरूर जाऊंगी। मुझे तो मालूम ही नहीं था। कौन से अस्पताल में है ?

"सिटी क्लिनिक में—"

उसी शाम मैं सिटी क्लिनिक पहुंची। वेटुल मेरे साथ था। ऑफिस के अन्य कई अधिकारी वहां पहले से ही उपस्थित थे।

"बड़ी जीवट है आप। अरे भई, एक पत्र दिल्ली लिख दीजिए, माता-पिता को सूचना तो दे दीजिए।"

"लिख दूंगी मिस्टर नेरूरकर, पर अब क्या जल्दी है ? अब तो ठीक हूं।

"डाक्टर का कहना है कि पूरे पन्द्रह दिन बिस्तर से नहीं उठना है, एकदम बेडरेस्ट—"

"और ऑफिस ? परसों टेंडर की डेट है। डिविजनल आफिसेज को इस वर्ष की सैंकशन अभी तक नहीं भेजी गई है। क्वाटरर्ली रिपोर्ट्स साइक्लोस्टाइल हो गई या नहीं ? हेड आफिस को कल तक जरूर पोस्ट हो जानी चाहिए—"

"ओह मिस नेहा, आय रिक्वेस्ट यू नाट टू वरी, सब हो जाएगा। सरकारी काम की इतनी परवाह क्यों करती है आप। कुछ लेट भी हो गया तो क्या फर्क पड़ता है ?

'नहीं,' मिस्टर नेरुरकर, सब काम सही समय पर होना चाहिए। किसी किस्म का कोई एक्सक्यूज नहीं चलेगा। ओ के ?"

"ओ के।"

"हैलो मिसेज वन्दना—"

हैलो ! कैसी हैं आप ? परसों आपने जिक्र तक नहीं किया—"

"बस यूं ही—अपने में लोगों को लगाए रखना मुझे अच्छा नहीं लगता—"

"लेकिन मैं देख रही हूं बहुत लोग आप में लगे हुए हैं," मैंने मजाक करने की छूट आदतन ले ली। पास खड़े मिस्टर सावंत मुस्कुरा उठे। मिस नेहा ने भी खुल कर हंसने का प्रयास किया, पर सिर्फ मुस्कुरा कर रह गई। मेरा ध्यान उनकी गर्दन की ओर गया, शायद आपरेशन के कारण उन्हें खुल कर हंसने में तकलीफ हो रही है।

"आपको ज्यादा बोलने की मनाही है, नेहा जी—"

"यस आई नो दैट—। इज ही योर सन ? वेरी इनोसेंट चैप।"

"कब तक रहेंगी आप यहां ?"

"कल छुट्टी मिल जाएगी।"

"स्टिचेज खुलने तक नही रुकेंगी ?"

"नही, स्टिचेज डिजाल्व हो जाएंगे।"

"छुट्टी मिलने के बाद कहां जाएंगी आप ?" पर्वतीकर पूछते हैं।

"कहा ? क्या मतलब अपने घर-सान्ताक्रूज और कहां ?"

"लेकिन—"

"आया है ना मेरे पास—"

"फिर भी—"

"आप लोग कुछ ज्यादा ही परेशान हो रहे हैं। और हां मिसेज वन्दना मेरे साथ रह लेंगी कुछ दिन। क्यों मिसेज वन्दना, ठीक है ना ?

"वन्दना जी को क्या एतराज होगा ? इनकी मकान की समस्या लीजिए स्वमेव सुलझ गई। आप दोनो की अच्छी कम्पनी भी रहेगी—आप दोनो दिल्ली की हैं—"

मुझे सूझा नहीं था मैं क्या कहूं। मुझे नेहा से अपनी बातचीत याद थी—योर ओन अप सन—प्लीज डोन्ट इन्सिस्ट—मेरा मन कतई उसके मकान में रहने के लिए नही था लेकिन उस समय मैं जैसे चुप कर दी गई थी और वह चुप ही मेरी स्वीकृति मान ली गई थी। जिसे निभाने के लिए हमें नेहा के मकान मे ही शिफ्ट करना पड़ा था।

उस दिन की नेहा और आज की नेहा में बहुत अन्तर है।

हमारी उस दिन की जान पहचान और आज की मित्रता में भी बहुत अन्तर है।

□

"चलो छोड़ो अब। मजे से चाय पिओ।"

नेहा ने आया को बुला कर नई-चाय बनाने का आदेश दिया। मैं आंखों पर बाह रखकर लेट गई।

"यह तुम्हें खोने की आदत बहुत है। कहाँ खो गई तुम ?" नेहा ने मुझे झझोड़ा तो मैं वापस लौट आई।

"मुझे ऐसा महसूस हो रहा है नेहा कि बम्बई मे आकर मैं लुट गई हूं। वेदुल के बिना —"

"मैं कहती हूं मर्द की गुलामी छोड़ो—"

"मर्द ? लेकिन मैं तो वेदुल की बात कर रही हूं—"

"मर्द नहीं है क्या वह ? मर्द नही बनेगा क्या वह ?—"

"क्या बेटा भी मर्द होता है ?"

"मेरी प्यारी मुनिया, नेहा ने मुझे प्यार से थपथपा कर कहा, मर्द सिर्फ मर्द होता है, चाहे वह किसी भी रिश्ते में हो, किसी भी रूप मे हो—"

मैं जानती हूं नेहा 'मर्द' शब्द का अर्थ। बातें पहले भी अनेक बार हुई है। बम्बई मे आने के लगभग तुरन्त बाद ही तो हम मिल गई थी और तब से हम सिर्फ बातें ही कर रही हैं, अपने-अपने पुराने जिए हुए हिस्सो को एक सजग संशोधन के साथ एक दूसरे के सम्मुख उडेल रही है। लेकिन वेदुल के लिए यह 'मर्द' शब्द नही नेहा—,मैं नही सह पाऊगी—उसे यूं अपने तरीके से गाली मत दो—मेरा वेदुल मेरा वेदुल है—तुम्हारे शब्द और अर्थ में मर्द नही। उसने मेरे मन का एक खाना भर दिया। वह जैसे मेरे मन की रिक्तता से परिचित है और बहाने-बहाने उसे पूरित करने का प्रयास किया करता है। वह बडा क्या हुआ है, मुझसे लम्बा क्या हुआ है कि मैं जी उठी हूं। एक बेटे पर दुनिया के सारे सुख न्योछावर किए जा सकते हैं। मैंने कर दिए हैं। और नेहा, तुम हो कि वेदुल को भी मर्द बना दिया। कितनी निर्दयी हो तुम !

यह सब मैं नेहा से नही कह रही। मन ही मन भुन रही हूं।

क्यों नेहा पर मर्द का दर्द इतना हावी है कि वह बच्चो में भी मर्द ढूंढ लेती है।

किसी के जीवन की घटनाए मात्र जान लेना ही तो किसी को पूरा जान लेना नही होता। तथ्यों मे सत्य की खोज का कभी-कभी एक सिरा भी नही मिलता। सत्य कितना भिन्न होता है उस सब कुछसे जो नजर आता है दिखाई देता है, जिसे हम आधार मानकर चलते हैं। पर आधार है कहा उसका जो सूक्ष्म है, अदृश्य है, अगम्य है घटनायें प्राय अनचाहे भी घट जाती हैं और सत्य हमारे मनो मे कही अनदीखा कुलकुलाया करता है।

नेहा कब मेरे पास से उठ कर गई और कब दोबारा लौट आई, मैं ख्यालों के ऊहापोह में जान नहीं पाई, उसने नमकीन की प्लेट मेरी ओर बढाई। मैंने खामोशी से एक तली हुई मूंगफली उठाकर अपने मुंह में रख ली। खामोशी मे ही मेरे मुंह से निकला—"सुबह-सुबह मूंगफली"

"सुबह क्या और शाम क्या ? हमने कौन सी माला जपनी है खाओ—'

"अब छोडो भी—" कुछ देर रुककर वह बोली। "चलो छोड दिया," मैं अपनी मानसिक स्थिति ठीक करने के खयाल से एक झटके से उठ बैठी। सामने कलेंडर पर दृष्टि गई तो पता चला आज रविवार है—जैसे कोई भूली बात याद आई हो। नेहा की गर्दन पर एक काला चकत्ता देख कर मुझे उसके आपरेशन का स्मरण हो आया। आपरेशन के स्मरण से पर्वतीकर का मिमियाता हुआ चेहरा मेरी आंखो के सम्मुख घूम गया। मैंने माहौल और बात का रुख बदलने के लिए कहा, "पर्वतीकर सज्जन पुरुष हैं।"

"क्यों सुबह-सुबह पर्वतीकर को याद कर रही हो ?"

"यूं ही ख्याल आया, भला आदमी है, तुम्हारे आपरेशन में कितनी भागदौड की उसने ?"

"भागदौड या दखलन्दाजी ? तब मैं यहां नई थी, मुझे किसी न किसी से तो अस्पताल के विषय में जानकारी लेनी ही थी ?, बस इतनी सी बात से वह स्वय को मेरा अभिभावक समझने लगा। मुझे अस्पताल ले गया लेकिन मुझे डाक्टर से कुछ कहने का अवसर ही नही दे रहा था, डाक्टर को मेरी बीमारी बताने का पूरा उत्तरदायित्व जैसे उसी का हो। अब मैं चाहे उससे कितने ऊंचे पद पर हूं, लेकिन उसकी दृष्टि मे मैं सिर्फ एक महिला हूं। जिसकी बीमारी तक उसके साथ आया पुरुष बताएगा।" एक क्षण चुप रह कर वह बोली "हम चाहे दफ्तरो में कितने ऊंचे पदों पर काम करें, लेकिन एक पुरुष क्लर्क तक हमें सुरक्षा देने की जिम्मेदारी अपनी समझता है। और तुम जानती हो मिसेज जोशी को ?"

"मिसेज जोशी कौन ? वही जो—"

"हां वही, कितने ऊंचे ओहदे पर लगी है, सर्वेसर्वा हैं अपने आफिस की एक घंटी बजाए तो चपरासी क्या, पूरा आफिस दौड़ा चला आता है पर घर में पति चाहता है कि वह "सोचे" नही। "सोचना" पुरुष की बपौती जो ठहरी। हम तुम्हारे रक्षक हैं, हम तुम्हारे लिए सोचेंगे, बस तुम अपनी लगाम हमारे हाथो मे दे दो, हम हांकेंगे तुम्हें..."

"पुरुष के अहम् का पोषण करने से ही तो घर गृहस्थी टिकती है। और घर गृहस्थी कितनी जरूरी है नेहा..."

"कुछ जरूरी नहीं है—"

"तुम्हारे जैसे विचारों से तो समाज का ढर्रा ही चरमरा जाएगा।"

"चरमरा जाने दो, नष्टभ्रष्ट हो जाने दो, एक बार टूट जाने दो सब, फिर नए सिरे से सब का निर्माण होगा, नए पुरुष का, नये समाज का —वह चोट कितने गहरे तक है मेरे भीतर—"

वह फिर उसी बिन्दु पर पहुंच गई है जहां वह हर बातचीत के अन्त में पहुंए जाया करती है। यही एक ऐसा बिन्दु है जो उसके ठोसपन को पिघला देता है। वह सचमुच रुंआसी हो उठी है, उसका अजन्मा शिशु उसकी आंखों में पानी बनकर उतर आया है।

"आज वह तुम्हारे बेटूल की ही उम्र का होता,,' कहते हुए उसका गला भर आया है।

"क्या जरूरी है कि वह लड़का होता? लड़की भी तो हो सकती थी," मुझे ऐसा लगा, मेरा ऐसा कहना व्यर्थ की बात थी।

"नहीं वह मेरा बेटा ही होता—मेरा बेटा—मेरा अश उसे मैं अपने आदर्शो के अनुरुप ढालती, सच वन्दना, यू आर लकी, यू हैव गाट अ सन, एक बेटा कितना जरूरी होता है, हर मबध से ऊपर, तुम्हारे मुकाबले मैं कितनी अकेली हू वन्दना, कितनी असहाय—"

मुझे याद आया जो वह अभी अभी कहकर भूल गई है—मर्द नही है क्या वह? मर्द नही बनेगा क्या वह? मर्द सिर्फ मर्द होता है चाहे वह किसी भी रिश्ते में हो, किसी भी रूप मे हो।

सदाबहार गुलाब

□ श्यामला हार्वे

अरी ओ मीना ...गुलाब तो लेती जा... अभी-अभी तोड़ा है...। देख तो सही, कितना ताजा और खिला खिला है...। अपनी लड़की सी आवाज मे चाची ने स्कूल भागती मीना को पुकारा।

पास बैठे उनके पति यानी हरिओम चाचा ने दाढ़ी बनवाते-बनवाते कन-खियो से उनकी तरफ देखा और सीधे हो गए। हज्जाम का उस्तरा उनके चेहरे पर चलता रहा। यूं तो उनका असली नाम और ही कुछ था लेकिन चू कि वे हर नमस्ते का जवाब 'हरि ओम तत्सत' से ही देते थे, इसलिए बड़े छोटे सभी उन्हे इसी नाम से पहचानते पुकारते थे। कई बार वे दोनो भी आपस मे एक दूसरे को चाचा चाची ही कह लिया करते थे...। क्या फर्क पड़ता था।

हरिओम चाचा पिछले चालीस वर्षो से इस इलाके मे जाने-पहचाने थे। शादी के बाद नई-नवेली दुल्हन को लेकर जो यहा आ बसे तो फिर उन्होने अपना घर बदलने की नही सोची थी। इस बीच उस पुरानी बिल्डिंग की जगह नई खड़ी कर दी गई थी और चार की जगह पन्द्रह परिवार, पन्द्रह 'फ्लैटो' मे आ बसे थे। लेकिन यह दम्पति हमेशा की तरह सबसे निचले फ्लैट की बालकनी मे से बाहर के निरन्तर गतिशील जीवन को टुकुर-टुकुर देखा करता। बिल्डिंग के बाहर-भीतर आने-जाने वालो की नजर सबसे पहले इन्ही पर पड़ती। जिससे उन्हे देखकर उनसे हरिओम तत्सत का आदान-प्रदान करना एक तरह से अनिवार्य-सा हो गया था। एक दो पुराने पडोसियो को छोड़ चाचा-चाची के लिए सभी का परिचय नया था।

सुबह आठ बजे तक हरिओम चाचा बालकनी मे बैठे आखों के बिलकुल पास तक उठाया अखबार पढते हुये देखे जाते। ऐसा करते हुए समाचारो की गरमा-गरमी के अनुपात में उनका मुह भी खुलता जाता! कई बार दाहिनी कनपटी तक जाती एक उभरी नस फड़कती हुई भी दिखाई देती। लेकिन

आठ के बाद अखबार को तो वे एक तरफ पटक देते और पैर तानकर स्कूल कालेज और नौकरियों पर जाने वालों की भागम्भागी का जायजा लेते रहते। बिल्डिंग के बाहर और सामने बस-स्टाप तक आते जाते लोग—उनकी उलझी भौंहें, कभी बदहवास तो कभी हताश बुझी आँखें—कुल-मिलाकर वे तनावों और प्रश्न-चिन्हों से भरे ऐसे-ऐसे चेहरे देखते जिन्हें वे न जवान कह पाते थे न बूढ़े...।

यह सब देखकर भुवन भाई पलकों के नीचे धंसी उनकी आँखों में यदा-कदा एक चमक सी तैर जाती। भौंहों और बालों की सफेदी को बधाई देती चमक...। स्थितियों के इतने बिगड़ने से पहले अपने हिस्से का जीवन जी लेने का संतोष...।

सुबह-सवेरे अपने हम-उम्रों के साथ बाईं ओर के बगीचे में जा बैठते। तब भी किसी को अपने बेटों की बेरोजगारी पर रोते हुए तो किसी को बहुओं के स्वार्थ की दुहाई देते देखते। ऐसे मौकों पर ये बुढ वर्ष पहले हुई अपने जवान बेटे की मृत्यु को भी एक दार्शनिक सुख में बदलकर देखते...'आज जीवित होता तो पता नहीं ऐसी कितनी उलझनों और परेशानियों की रेखायें उसके चेहरे पर होती...।'

चाची सुबह के वक्त कम ही दिखाई देती। एक तो घर के काम-काज निपटाने की व्यवस्था और उसके बाद अपने गुलाब के पौधों को सींचना... उन्हें खाद-खुराक देना...। लोहे की जाली से घिरे-घिरले बरामदे में गमले तो कई थे लेकिन उनमें लगे गुलाब एक ही रंग के थे। चाची के देखते-देखते हर नई चीज पुरानी हुई थी और पुरानी की जगह फिर नई चीजों ने ले ली थी। लेकिन उनकी दिनचर्या इन लाल गुलाबों से सदा इसी तरह महकती चली आई थी। अक्सर वे याद कर लिया करती कि शादी के पहले पापा हर मुलाकात में उनकी चोटी में एक लाल गुलाब गूंथ दिया करते थे। एक बार उन्होंने पूछ भी लिया था, 'आप मेरे लिए कभी पीले या गुलाबी रंग के गुलाब नहीं लाते!...कोई खास वजह है क्या?' जवाब मिला था, ''पीले गुलाबों से आदर व्यक्त किया जाता है और गुलाबी गुलाब स्वास्थ्य की कामना में दिये जाते हैं। जब कि ये लाल गुलाब...। इनका रंग भी गहरा है, मीठी गुदगुदाती महक है और ऊपर से ये घनी-घनी मखमली पंखुड़ियां...। और किसी कवि की पंक्तियां गुनगुनाने लगते, माइ लव इज लाइक अ रेड़ रेड़ रेड रोज...।

और आज, उनका जीवन तो मुरझा गया था लेकिन ये गुलाब उसी तरह सींचे जाते, खिलते-महकते रहे। मगर इन फूलों का इस तरह बिना और उपयोग में लाए बिना ही पौधों पर कुम्हला जाना चाची से कतई नहीं देखा जाता। इसीलिए आने-जाने वालों में से किसी न किसी को आवाज लगाकर वे फूल दिया करती। उसे उनके काले घने बालों पर लगा देख उनके ... रे

की झुर्रियों पर भी एक सतोष का रंग निखर आता...।

सतुष्ट और समतल दिनचर्या थी उन दोनों की...। हालांकि उनके बीच बातें भी बहुत कम ही होतीं। बस एक खामोशी-भरा पारस्परिक साथ रहता...। अक्सर बालकनी में बैठे चाचाजी आने जाने वालों को देखा करते और पास बैठी चाची पेड़ों की घनी हरियाली के बीच से छनकर आती सूर्यास्त की लालिमा को एक-टक देखती रहती।

रोज की तरह इस बार भी चाची आकाश में उड़ते पक्षी और उनका कलरव देखती-सुनती बैठी थी। चाचा जी अपनी सहेलियों में बतियाती रही, कुसुम को देख रहे थे। दरअसल बिल्डिंग में आए कई नए चेहरों में से बस यही एक चेहरा था जिसमें रंग भी था और ताजगी भी थी, चाल में हर वक्त न जाने कहां चलकर पहुंचने की जल्दी रहती...। उसकी बड़ी-बड़ी लेकिन जानदार और नुकीली आंखों में हमेशा कोई महत्वपूर्ण काम करने का उत्साह रहता या कुछ बहुत ही सार्थक काम करके लौटने का सतोष...।

उसे देख कई बार चाची के मन में अनायास एक विचार टिमटिमा उठता अरुण आज जीवित होता तो ऐसी ही एक बहू उसे भी ला देती। लेकिन इधर कुछ दिनों में उनकी अनुभवी आंखों ने न जाने क्या देख लिया था कि यह टिमटिमाता विचार अपने आप बुझ गया था।

"ठंड काफी पड़ने लगी है।" अपनी लम्बी बांह के स्वेटर पर चादर ठीक से ओढ़ते हुये चाची ने अन्दर से ऊनी टोपी और मफलर लाकर उनके हाथों में थमाया और दिया बत्ती करने अन्दर चली गई।

टोपी पहनते हुये चाचाजी ने सोचा, जरा चल फिर कर हाथ पैर गरमा लेना ज्यादा ठीक रहेगा। इन दिनों प्रातः भ्रमण को जाना भी उन्होंने छोड़ सा दिया था। कुछ दिन पहले हुये उस अजीब से अनुभव के बाद जब एक छोटा सा गड्ढा पार करने के लिए उन्होंने पैर उठाया था और उनके विचार से पैर उठ भी गया था। लेकिन झुककर देखा तो पैर जहां का तहां रखा रह गया था...। तब से वे कम्पाउन्ड में ही टहल लिया करते थे।

"हरिओम तरसत चाचा जी कैसे है।" कहती हुई कुसुम सीढ़ियों की तरफ बढ़ गई और कैसे है एक अप्रिय गूंज बनकर चाचा जी की आत्मा के इर्दगिर्द मंडराती रह गई।

"खाना लगा दूं या जरा घूम आओगे?" दुबारा जरा ऊंची आवाज में चाची पूछ रही थी।

'हां' चौंकते हुये वे बोले,' खाना लगा ही दो...कल घूम लूंगा...।

चाची का गुस्सा अक्सर कम्पाउण्ड में खेलते बच्चों पर उतरता। उनकी आम शिकायत होती, लोग खुद तो अपने-अपने घरों में पखे के नीचे आराम से बैठे रहते हैं लेकिन बच्चों को हुडदंग मचाने नीचे भेज देते है। घुड़कियों

और धमकियों के बेअसर हो जाने पर गुस्से को एक आकार देते हुये वे अपनी रसोईघर की खिड़की में से बाहर खेलते बच्चों पर पानी छिड़क देती या उन पर सूखी पत्तियां डाल देती। बच्चे भी बिना कारण उनका दरवाजा खट-खटाते और सीढ़ियों के पीछे जा छुपते...। चाची के दरवाजा खोलने और फिर गुस्से में उसे भिड़का कर लौट जाने पर वे खिलखिलाते हुये अपनी-अपनी जगहों से निकल आते। विशेष रूप से होली के दिनों में चाची को अपने पानी भरे गुब्बारों का शिकार भी बनाये बिना नहीं रहते। चाची अपनी फटी आवाज में जली-कटी सुनाती रह जाती, अरे कलमुहों, हम बूढ़ों को तो छोड़ दिया करो...।"

बहुत दिनों से कुसुम दिखाई नहीं दी थी। 'बीमार तो नहीं पड़ गई ?' उखड़े मन से चाचा जी ने सोचा। रह-रह कर उनकी आंखें उसकी बालकनी की तरफ उठ जाती और मन में तरह-तरह के विचार घिर आते। शाम उतर आयी थी. चाचाजी ने गौर किया कि आफिसों से और नौकरियों से मुरझाये, झुलसे चेहरे एक-एक कर लौट रहे थे।

हमेशा की तरह चाचीजी ने भी घर के काम-काज निपटाए ठाकुर जी के आगे दिया जलाया। दो-एक फूल चढ़ाये और बाकी फूलों को सहेज कर रेफ्रिज-रेटर में रख दिया और बाहर आ बैठी। अपनी खिंची चमड़ी और उभरी नसों वाली हथेलियों को घिस रगड़ कर गर्मी पैदा करती चाची को देख पास बैठे चाचाजी के मन में अनायास एक प्रार्थना-सी उठी, "ईश्वर इस सीधी-सादी पत्नी को उसकी पूजा और व्रतों का इतना फल तो दे ही दे कि चार दिन ही सही, मुझसे पहले इसे अपने पास बुला ले...।"

"कैसी तबीयत है चाचाजी ?" अरे, चाची भी बैठी है।

पलटकर चाचा जी ने खिले मन से कहा, 'हरिओम तत्सत' लेकिन तब तक कुसुम अपने भाई के साथ सीढ़ियों की तरफ बढ़ गई थी। सच तो यह था कि उन्हें शिष्टाचार का यह वाक्य, 'तबीयत कैसी है ?' बड़ा बेहूदा लगता था। क्योंकि उसका सीधा-सीधा मतलब यही निकलता था कि पूछने वाले को उनकी तबीयत के ठीक होने में संदेह है।

"हुंह डालडा और मिलावट की चीजों पर पलती यह पीढ़ी क्या जाने... तबीयत क्या चीज होती है...।" मौन झुंझलाहट में उन्होंने अपने बालों पर हाथ फेरा।

"चाचा जी आपकी चिट्ठी !" चौंक कर उन्होंने देखा कुसुम इतने में साड़ी बदलकर आई थी और उसके हाथ में एक लिफाफा था।

"पोस्टमैन गलती से पन्द्रह नम्बर में डाल गया था...। उन्हीं ने भिज-वाई है...।" वह कह रही थी। स्निग्ध मुस्कान के साथ लिफाफा लेते हुये उन्होंने पूछा, "अभी-अभी तो आई और अभी फिर बाहर चली ?"

की झुरियों पर भी एक संतोष का रंग निखर आता

संतुष्ट और ममतत्व दिनचर्या थी उन दोनों की
बातें भी बहुत कम ही होतीं। बस एक खामो
रहता...। अक्सर बालकनी में बैठे चाचाजी आने व
और पास बैठी चाची पेड़ों की घनी हरियाली के
सूर्यास्त की लालिमा को एक-टक देखती रहतीं।

रोज की तरह हम यान भी चाची आकाश
कलख देखती-सुनती बैठी थी। चाचा जी अपनी
कुसुम को देख रहे थे। दरअसल बिल्डिंग में आप
यही एक चेहरा था जिसमें रंग भी था और ताजगी
न जाने कहां चलकर पहुंचने की जल्दी रहती...।
जानदार और नुकीली आंखों में हमेशा कोई
उत्साह रहता था कुछ बहुत ही सार्थक काम करने

उसे देख कई बार चाची के मन में अनायास
अरुण आज जीवित होता तो ऐसी ही एक बहू उसे
कुछ दिनों में उनकी अनुभवी आंखों ने न जाने
टिमटिमाता विचार अपने आप बुझ गया था।

"ठंड काफी पड़ने लगी है।" अपनी लम्बी
ठीक से ओढ़ते हुये चाची ने अन्दर से ऊनी टोपी
हाथों में थमाया और दिया बत्ती करने अन्दर च

टोपी पहनते हुये चाचाजी ने सोचा, जरा च
लेना ज्यादा ठीक रहेगा। इन दिनों प्रातः भ्रमण
सा दिया था। कुछ दिन पहले हुये उस अजीब से
सा गड्ढा पार करने के लिए उन्होंने पैर उठाय
पैर उठ भी गया था। लेकिन झुककर देखा तो
गया था...। तब से वे कम्पाउन्ड में ही टहल लिय

"हरिओम तरसत चाचा जी कैसे है।" कट
तरफ बढ़ गई और कैसे है एक अप्रिय गूंज बनकर
इर्दगिर्द मंडराती रह गई।

"खाना लगा दूं या जरा घूम आओगे?" दुब
चाची पूछ रही थी।

'हां' चौंकते हुये वे बोले,' खाना लगा ही दो...'

चाची का गुस्सा अक्सर कम्पाउण्ड में खेलते बच्च
आम शिकायत होती, लोग खुद तो अपने-अपने घरों में
से बैठे रहते है लेकिन बच्चों को हुड़दंग मचाने नीचे भेज

शीत-गृह

❑ पुष्प कुमार

ठीक सात बजे हैं...रोज की तरह कमरे मे उतरता हल्का-हल्का अंधेरा उसका स्वागत करता है। शायद वह भी जान गया है कि कमरे मे आते ही वह सामने की टेबल पर अपना पर्स रखेगी उसमे से खाने का डिब्बा निकालते हुए वही पास की कुर्सी पर निढाल सी हो बैठ जायेगी। सच भी तो है, उसने आज तक कुर्सी पर बैठने के बाद कभी इतनी हिम्मत नही महसूस की कि उठकर बत्ती जलाये। हिम्मत करके भी क्या हो जाता, दिनभर ऑफिस मे पूरी तरह निचोड ली जाती है वह, काम सिर्फ काम और उसके बाद लोकल की भाग दौड। हाफते हुए गाड़ी पकडना, किसी सीट के लिए छीना-झपटी, पसीने की भरपूर गंध में मिली अन्य लडकियो-औरतो के पाउडर आदि की गंध के साथ एक लम्बा सफर—फिर स्टेशन से घर तक अपने आपको घसीटते हुए लाने का थका-थका प्रयास...उसने कुछ भी नही छोड़ता। वह चुपचाप पर्स से चाबी निकाल अपने फ्लैट का दरवाजा खोलने के बाद एक तरह से लुढक जाती है—कुर्सी पर। कमरे मे दिन भर की इकट्ठी सीलन और ठहरा हुआ सन्नाटा उसे समेट लेता है अपने आप में और वह जम कर रह जाती है भीतर बाहर। यूं लगता है जैसे यह ठंडापन वर्षो मे उसकी प्रतीक्षा करता है। बस वह आती है और निगली जाती है और जब तक अगली सुबह उठकर आफिस के लिए नही निकल जाती यह जमाये रखता है उसे, जीवित पर मृत समान।

मदन का कोई भरोसा नही कब आये, अवसर तभी आता है जब वह सो चुकी होती है। देर रात तक चलता है मदन का संसार। उससे कितना अलग है उसका संसार। वह रंग-मंच से जुड़ा है, वर्षो से संघर्षरत है वह। हिन्दी रंगमच की अपनी पहचान बनाने के लिए दिन भर घर में, कभी दोस्तो के साथ, कभी अकेले, कभी नाटक मंडली के साथ रिहर्सल करते हुए शाम को निकल जाता है पृथ्वी थियेटर की तरफ तो फिर रात आधी बीत जाने तक उसे

"जी...यही पास में'''छोटा सा एक काम है...।' अस्पष्ट सा उत्तर देकर वह आगे बढने को उद्यत हुई ।

"जरा एक मिनट" हाथ के इशारे से उसे रोक कर वे पत्नी की ओर मुड़े, "जाओ जाके ले आओ...फूल देना चाहती थी न...।"

चाची की अनक्षिप आंखों ने उनकी तरफ देखा...। जरा गौर से देखा... और..."हां देना तो चाहती थी ।" गला साफ करते हुये चाची बोली, "लेकिन अभी-अभी मैंने उसे किशन-भगवान पर चढा दिया...।"

शीत-गृह

□ पुष्प कुमार

ठीक सात बजे है...रोज की तरह कमरे में उतरता हल्का-हल्का अंधेरा उसका स्वागत करता है। शायद वह भी जान गया है कि कमरे मे आते ही वह सामने की टेबल पर अपना पर्स रखेगी उसमे से खाने का डिब्बा निकालते हुए वही पास की कुर्सी पर निढाल सी हो बैठ जायेगी। सच भी तो है, उसने आज तक कुर्सी पर बैठने के बाद कभी इतनी हिम्मत नही महसूस की कि उठकर बत्ती जलाये। हिम्मत करके भी क्या हो जाता, दिनभर ऑफिस मे पूरी तरह निचोड ली जाती है वह, काम सिर्फ काम और उसके बाद लोकल की भाग दौड। हांफते हुए गाड़ी पकडना, किसी सीट के लिए छीना-झपटी, पसीने की भरपूर गंध मे मिली अन्य लड़कियो-औरतो के पाउडर आदि की गंध के साथ एक लम्बा सफर—फिर स्टेशन से घर तक अपने आपको घसीटते हुए लाने का थका-थका प्रयास...उसमे कुछ भी नही छोडता। वह चुपचाप पर्स से चाबी निकाल अपने फ्लैट का दरवाजा खोलने के बाद एक तरह से लुढक जाती है—कुर्सी पर। कमरे मे दिन भर की इकट्ठी सीलन और ठहरा हुआ सन्नाटा उसे समेट लेता है अपने आप मे और वह जम कर रह जाती है भीतर बाहर। यू लगता है जैसे यह ठंडापन वर्षो से उसकी प्रतीक्षा करता है। बस वह आती है और निगली जाती है और जब तक अगली सुबह उठकर आफिस के लिए नही निकल जाती यह जमाये रखता है उसे, जीवित पर मृत समान।

मदन का कोई भरोसा नही कब आये, अक्सर तभी आता है जब वह सो चुकी होती है। देर रात तक चलता है मदन का ससार। उसमे कितना अलग है उसका संसार। वह रंग-मच से जुड़ा है, वर्षो से संघर्षरत है वह। हिन्दी रगमच की अपनी पहचान बनाने के लिए दिन भर घर मे, कभी दोस्तो के साथ, कभी अकेले, कभी नाटक मंडली के साथ रिहर्सल करते हुए शाम को निकल जाता है पृथ्वी थियेटर की तरफ तो फिर रात आधी बीत जाने तक उसे

घर यादनही आता । मदन की इस आदत या फिर अपनी स्थिति को वह स्वीकार कर चुकी है । सच तो यह है कि उसके पास स्वीकार करने के सिवा कुछ भी नही था ।

कुछ ही देर के बाद अधेरा जब सहन नही होगा और मन में कहीं कोई तलब उठेगी तब वह मजबूर हो जायेगी उठने के लिए । कुर्सी से उठकर अपने बदन को अगडाई से तोडने का प्रयास करते हुए बत्ती जलायेगी और फिर असहाय सी बाथरूम मे । तब इस ठड भरे कमरे मे गूजती रहेगी पानी की आवाज देर तक । वह जानती है—उस गूंजती आवाज और ठंडेपन के अलावा कुछ भी नहीं है इस कमरे मे—बस चार दीवार—छत और...यह छोटा सा घर कितना खाली लगता है । पर कितना बड़ा, मदन और वह कुछ घटे साथ बिताते है और फिर निकल जाते है अपने-अपने रास्तों पर तब यह कमरा बटोरने लगता है उदासन ' वह बाथरूम से बाहर निकल कर फिर कुर्सी पर आ बैठती है रोज की तरह । छत पर घूमते पखे की आवाज के साथ बटो-रने लगती है अपने आप को ।

☐

मम्मी और डैडी की वह पहली संतान थी उसके जन्म के साथ आसपास के लोग जरूर बतियाते कि शर्माजी के लडकी हो गयी । पहली ही संतान । पर डैडी के लिए वह सपनें की प्यारी सी गुडिया थी । बचपन शहजादी सा बिताया उसने । फिर एक बहन पैदा हुई और फिर एक भाई । पर उसे मिलने वाले प्यार में मम्मी-डैडी ने कभी कोई कमी नही आने दी । छोटी-छोटी बातें, नन्ही-नन्ही मागे सब पूरी होती गयी । उसके मन मे एक गरूर रहने लगा कि वह तो शहजादी है, रानी है । वह जिद्दी हो गयी, सब भाई बहनो से अलग उसका ससार फैलने लगा । आसपास, स्कूल में और उसके बाद कालेज मे वह पूरी तरह अपनी मर्जी से बनी । उसका अपना व्यक्तित्व एक ऐसे ढाचे मे ढलने लगा जिसमें सिर्फ वह थी—और कोई नहीं...न कोई उसके व्यक्तित्व से जुड पाया और न ही उसने किसी को शामिल किया...। उसको दी गयी आजादी का उसने भरपूर आनन्द लिया, वह स्वतन्त्र थी हर काम के लिए, अपने हर निर्णय के लिए कभी जिंदगी मे नकारात्मक बात उसने नही स्वीकार की । घर से मिलनें वाला प्यार, पैसा और उसके साथ मिलने वाली आजादी ने उसके व्यक्तित्व को नयी दिशा दी । वह स्कूल कालेज की हर गतिविधि में खुलकर भाग लेने लगी । हर प्रकार के आयोजन उसने किये । कैम्प दूर दराज की पिकनिकें, न जाने कितना कुछ । कभी किसी ने टोका नही, कभी किसी ने पूछा नही कि रात को देरी क्यो हो जाती है । तीन दिन कहां रही । इतने पैसे कहा खर्च हुए, वह साडी किसे दे आयी, वह लडकों के साथ अकेली क्यो गयी, किसी ने कभी कुछ नही पूछा—कितनी निरकुश थी वह । सच, कैसा था वह जीवन...। और अब...।

नहाने के बाद कुर्सी पर बैठने पर उसे लगा सामने टेबल पर कुछ रखा है। मदन की चिट। बातचीत के लिए यही एक मात्र साधन होता है उन दोनो के बीच। वह पढ़ने लगी "जानता हूं रानी तुम नाराज होओगी पर आज शो के बाद नरेन्द्र के यहां पार्टी है तुम मेरे लिए खाना मत बनाना—मदन" वह एक लम्बी सांस खींचती है। यह कैसे संबन्ध है उसके और मदन के बीच—पति-पत्नी या कुछ और या इस संबंध का नाम समझौता मात्र है। मदन को स्वीकार करने मे उसने कितना कुछ सहा। समाज ने उसे जरा भी नही बख्शा और क्यों बख्शता उसे। स्थितियां तो उसने खुद बनायी हैं—उसे ही स्वीकार करनी होगी।

उसे याद है, छोटी बहन नीनी ने जब मम्मी के सामने कहा कि वह परेश के बच्चे की मां बनने वाली है अतः उसकी शादी परेश से करा दी जाये तो घर में पहली बार एक सन्नाटा छाया था। मम्मी-डैडी रात भर सो नही पाये। उन्हे चिंता थी अभी तो रानी कुंवारी बैठी है उसकी शादी... पहली बार डैडी को उसने हारा हुआ देखा। डैडी उसके पास चुपचाप आ खड़े हुए। बिना बोले—सब कुछ बोल गये और उसने चुपचाप डैडी और उनके दोस्तों के लाये प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया—अपनी शादी के लिए सहमति दे दी ताकि उसकी बहन परेश के घर में अपना बच्चा पैदा कर सके। उसके निर्णय से उसके पूरे सर्कल मे एक झटका सा लगा पर उससे पूछता कौन। पहली बार उसको अपने स्वच्छन्द व्यक्तित्व पर एक बोझ लगा। पर उसने शायद डैडी द्वारा दी गयी असीम स्वच्छंदता से उऋण होने की भावुकता में यह निर्णय लिया था। शादी हो गयी। वही एक नये घर मे नये आदमियों के बीच पहली बार एक बंधन ओढे हुए आ गई। पर यह क्या, यह बंधन उसे चुभता क्यों है। सास ससुर के सवालिया बर्ताव का वह समाना क्यों नही कर सकती—पति का प्यार उसे स्वीकार क्यो नही होता, उसे लगने लगा कि उसके भीतर एक मजबूत दीवार है जो टूटना नही चाहती, अटल रहना चाहती है, पर दीवार कब बनी यह वह नही जानती। उसे क्या होता जा रहा है शादी होने के दो दिन बाद ही उसे जेल सा क्यों लगने लगा? नया घर, पति की हर बात का जवाब वह मुंहफट लड़की की तरह क्यों दे रही है? हर बात का उल्टा अर्थ क्यों निकल रहा है, नही-नही उससे नही रहा जाता इन बंधनों में, वह तो स्वतन्त्र है आजाद पक्षी की तरह ओह! मम्मी नीनी को अपना बच्चा परेश के यहां जनना था पर यह यातना मुझे क्यो, क्यों नही मेरा मन सब कुछ स्वीकार कर लेता...पहली बार ससुराल से लौटने पर वह अपनी मम्मी से लिपट कर रो पड़ी और निकल गयी अपने दोस्तो के बीच—मम्मी ने पीठ थपथपाकर उसे दिलासा दी कि बेटी सब ठीक हो जायेगा। और वापिस भेज दी गयी वह बंधनो के बीच। पर ठीक क्या

हुआ ? दस दिन ससुराल मे रहने के दौरान भी उसके भीतर की दीवार की एक ईंट भी नही हिली। वह हर व्यवहार को एक चोट की तरह सहे जाती रही और जब चोटों का दर्द असहनीय लगने लगा तो निकल भागी उस घर से मम्मी डैडी के आगन मे और रो पडी। "नही डैडी नही मैं नही जाउगी, वहां मैं नही रह सकती..." वह जानती थी नीना की शादी तय हो चुकी थी, उसके डैडी मम्मी दोनो ने उसे अपनी बाहों मे समेट लिया। पर वे समझ नही पाये कि कहा क्या गलत हो गया...उनका प्यार यह कैसा रूप लेकर आया...पर चूंकि वे मा-बाप है उन्होने आज तक अपनी रानी की आखो मे आनू नहीं देखे। अब कैसे देख सकते है। वह गलत है या सही इसका फैसला वे नही कर पाये...।

वह आजादी की सास लेने लगी, फिर लम्बा सिलसिला शुरू हुआ समझौते के प्रयास का। ससुराल वाले लेने आये, वह नही गयी और अन्त तक वहा नही गयी क्योकि मम्मी-डैडी की बाहो मे आजादी लगी उसे। उसके भीतर की दीवार यहा आकर फूल बन जाती है और फिर वह व्यस्त हो गयी, भूल गयी जिन्दगी के उस मोड़को...उसने लड़के को लौटा दिया। खो गयी अपनें दोस्तो के बीच पिकनिक, नाटक, खेलकूद मे...समझौते के प्रयासों का अन्त हुआ तलाक में पहली बार एक बडा परिवर्तन उसके जीवन का उसे स्वीकारना अच्छा लगा...पर सारी कानूनी कार्यवाई के दौरान उसने अपने पति की आखो मे एक मूक सवाल देखा—जो उसके भीतर खूटे की तरह चुभता रहा... आज भी चुभता है। वह सोचती है उस लड़के का कसूर क्या था...सिवा उसके अपने पागलपन के...

वह आजाद थी, अकेली मनमोजी, दोस्तो का काफिला बढ गया। सब कोई सहानुभूति प्यार और आकर्षण लेकर जुट गये चारों तरफ। उसका अहं फलने फूलने लगा, समय के साथ-साथ, पर अचानक मदन आया उसके जीवन मे। उसे अच्छा लगा, मदन का व्यक्तित्व खुला-खुला स्वच्छन्द कोई बधन नही किसी को अपने से जोडने से परे...निरकुश...अकेला लडका रगमंच की हस्तियो से जुड़ा...बस, मदन उसके मन को भा गया। वह सोचती थी उसके साथ बंधकर भी वह आजाद है—क्योकि मदन खुद भी उसी तरह का...वह उस क्षण भूल गई कि मदन भी पुरुष है जो नारी को बाध देता है बधनो मे। दो आजाद पक्षियों का साथ आकाश की ऊचाई तक नापने के लिए उसने सबकी मर्जी के विरुद्ध मदन का प्रस्ताव स्वीकार किया था और दूसरे पति के रूप में अपना लिया मदन को।

उसने नौकरी कर ली, शायद उसे करनी पडी...मदन के साथ का खुमार उतरने लगा। वह सोचती है मदन के साथ शादी के बाद क्या वह आजाद रह पायी। नौकरी भी तो मदन के कहने पर की। मदन ने उसके दोस्तों को भी

कम कर दिया, धीरे-धीरे मदन भी एक बंधन में बांधने लगा। उस दिन खाने की टेबल पर पहली बार वह गुस्सा हो गया "रानी तुम मेरी औरत हो तुम्हें यह जानना चाहिए कि मुझे ठंडा और बासी खाना पसन्द नहीं। जाओ गर्म कर लाओ", और रात दो बजे वह खाना गर्म करने को मजबूर हो गयी जबकि अपने डैडी के घर कभी उसे चाय तक खुद नहीं बनानी पड़ी। इस प्रकार की छोटी-छोटी बातो ने उसके भीतर की दीवार को जड़ से उखाड़ फेंका···जिसकी नींव पहली शादी और दूसरी शादी के बीच की अवधि के दौरान धीरे-धीरे सीलन पकड़ती गयी और अब ढह गयी···शेष रह गई कोरी सीलन···एक अनचाहा ठंडापन।

उसने मदन को स्वीकारा,पर क्या मदन भी उसे स्वीकार कर पाया या सिर्फ एक सहानुभूति ने उसे स्वीकार करने को मजबूर किया या मदन की बढती उम्र एक औरत चाहती थी अपने में जुड़ने के लिए। कभी-कभी उसे लगता है मदन ने उसे नौकरी के लिए क्यों कहा। इसलिए तो नहीं कि वह नाटक से कमाता कुछ नहीं खोता ही है। क्या उसे अपनी रोटी के लिए बांध लिया मदन ने···हीं वह यह सब क्यों सोचती है, तलाक के बाद उसके पास भी तो कोई चारा नहीं था। पड़ोस के जवान लड़को की ही नहीं उसके पूरे सकिल में वह एक दूसरी वस्तु बन गयी थी। लोग उसे पाने की, हथियाने की कोशिश करने लगे थे। सच तलाक के बाद क्या औरत सहज उपलब्ध होने की चीज हो जाती है। एक लम्बे सवालिया जीवन ने उसे हरा दिया था। भीतर ही भीतर और वह मदन का दामन थाम बैठी जबकि उसने मदन को स्वीकार करने के साथ ही अपने भीतर एक घुटन पैदा कर ली थी। पहली रात प्रेम के उन्माद क्षणों में मदन क्षणभर के लिए सहम सा गया था। उसे शायद उसके शरीर को स्वीकार करने मे संकोच हुआ होगा। पर यह संकोच अब भी है। अभी भी वह खुलकर प्यार नहीं करता अनदेखा सा प्यार करता है सहज नहीं हो पाता। पर क्यो? उसे मन ही मन खाने के टेबल पर कहे वे शब्द याद हो आते है कि उसे ठंडा और बासी खाना अच्छा नहीं लगता तो क्या उसका मन, उसका शरीर बासी और ठंडा है, झूठा है, नहीं मदन नहीं, तुम्हें उसने स्वीकारा है अपनी पूरी भावना के साथ इसमें बासी और झूठा या ठंडा कुछ भी नहीं है, काश मदन उसके मन और शरीर की भाषा समझ जाता···काश। पर नहीं यह एक ग्रंथी मदन के भीतर इतनी गहरी पैठ गयी है कि वह उससे मुक्त नहीं हो सका, शायद कभी भी नहीं हो पायेगा।

तीन साल का वक्त बीत गया, इस प्रकार अपने आपको ढोते हुए। मम्मी और डैडी का आंगन भी अब पराया हो गया। उसे याद आता है तलाक के कागजों पर उसका हस्ताक्षर करना, अपनी पहली ससुराल में बिताया शादी के गीतों से गूंजता पहला दिन, पहली सुहाग रात, पहला पति, पर ये यादें,

इतने दिनों तक साथ क्यों है ? क्या इसलिए कि मदन भी उसका न हो सका, मदन की ठंड़ी ग्राखें उसके शरीर से क्या कुरेद देना चाहती हैं। वह ग्राज तक नही समझ पायी। मदन के दोस्तो ने या ग्रॉफिस के साथियों ने उसे ग्रन्य ग्रौरतो से परे ग्रलग दृष्टि से हरदम क्यो देखा है, क्या उसका शरीर उसके जीवन का मापदंड हो गया या उसकी पहली शादी उसका शाप। मदन सच कहूं एक बार सिर्फ एक बार उसे स्वीकार कर लो पूरी तरह यह ठडापन, यह शाप कुछ धुल जायेगा। पर वह जानती है मदन ऐसा नही करेगा। उसे एक मुर्दा शरीर इस ठंडे घर मे लम्बे समय तक बनाये रखना होगा शायद सड़ने की सीमा तक'''। उसकी ग्रांखें कुर्सी पर बैठे-बैठे लग गयी खिड़की की तरफ देखते हुए।

प्वाइंटेड शू

☐ जितेन्द्र कुमार मित्तल

जब वह अपने आफिस से नीचे उतरा तो उसका बदन बुरी तरह से टूट रहा था, मानो वह सारे दिन बोझा ढोता रहा हो। लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वह सडक पर आ गया। उसने गौर किया कि पाच बजते ही सडक पर टैक्सियों, कारो और लोगो का आवागमन बढ गया था। कुछ छोकरे दौड-दौड़ कर लोगों के लिए टैक्सिया रोक रहे थे। वह अनमना सा फुटपाथ पर बढा जा रहा था। उसका दाया हाथ पैंट की जेब मे था और वह जेब मे पड़े हुए दस-दस पैसे के चार सिक्को मे खेल रहा था। तभी एक छोकरा उसके सामने आकर खडा हो गया और उससे बोला, "साहब टैक्सी ?" एक क्षण को उसका जेब मे पैसो से खेलता हाथ स्थिर हो गया और वह आंखें फाड़ कर उस छोकरे की तरफ देखने लगा, उसे लगा कि यह छोकरा मजाक बना रहा है। लेकिन फिर दूसरे ही क्षण वह स्वाभाविक हो गया और चेहरे पर मुस्कराहट लाने की कोशिश करता हुआ उससे टैक्सी के लिये मना करके आगे बढ गया।

थोड़ी दूर आगे जाकर उसका मन करता है कि आज वह बस से घर चला जाये लेकिन फिर वह अपनी गर्दन को एक तरफ झटका देकर सोचता है कि जब मंथली रेलवे पास बना रखा है तो फिर बस मे पैसे बर्बाद करने से क्या फायदा। वह अपनी जेब में पड़े दस-दस पैसे के चार सिक्कों से फिर खेलने लगा है। वह महसूस करता है कि सडक पर तेजी से इधर-उधर दौड़ते हुए सभी लोगों के चेहरो पर उसके चेहरे जैसी ही मुर्दानगी छाई हुई है।

सड़क पार करने के बाद वह अपने आपको मैंट्रो सिनेमा के सामने खड़ा पाता है। पिक्चर के पोस्टरो में निगाहें गड़ाता हुआ वह सोचता है कि इंगलिश पिक्चर देखे कितने दिन हो गये। कई बार उसने मैंट्रो मे पिक्चर देखने का प्रोग्राम बनाया। लेकिन हर बार कोई न कोई जरूरी खर्चा उसके सामने आकर खड़ा हो गया। अनजाने ही वह टिकट की खिड़की के सामने की

लाइन मे जाकर खडा हो जाता है। उससे पहले लाइन मे आठ-दस लोग और खड़े हैं। उसके एकदम आगे एक पारसी नौजवान खडा है। उस नौजवान के नुकीले जूते देखकर उसे ख्याल आता है कि पिछले कई महीनो से वह व्हाइटेड शू खरीदने की सोच रहा है, लेकिन मकान के किराये, लाड्री वाले, दूध वाले, राशन वाले और मथली पास मे ही उसकी सारी तनख्वाह खत्म हो जाती है, जैसे वह अपने लिये नहीं, वरन उन सभी के लिए नौकरी करता है।

वह गौर करता है कि पारसी नौजवान के आगे एक महाराष्ट्रियन लडकी खडी हुई है। महाराष्ट्रियन लडकियों को वह फौरन पहचान लेता है। कितनी टिपिकल होती है वे। गुजराती, सिन्धी और क्रिश्चियन लडकियो मे उसे कोई अन्तर नजर नही आता। महाराष्ट्रियन लडकी बुकिंग क्लर्क से टिकट ले रही है। क्लर्क मुस्कराकर उसको किसी बात का जवाब दे रहा है शायद लडकी कोई खास सीट चाहती है। और अब पारसी लड़के का नंबर है। तभी उसका दाहिना हाथ अपनी पैंट की जेब में चला जाता है और उसके हाथ मे दस-दस पैसे के चार ठण्डे सिक्के आ जाते हैं। वह तेजी से लाइन से निकल कर बाहर सडक पर आ जाता है, मानो बिजली के किसी जबरदस्त धक्के ने उसके पूरे तन-बदन को हिला दिया हो।

वह तेजी से मैरीन लाइन्स स्टेशन की तरफ बढ जाता है। स्टेशन पर हमेशा की ही तरह बेशुमार भीड है हालांकि वह पिछले चार साल से बंबई मे नौकरी कर रहा है फिर भी भीड़ को देखकर उसका मन घबराने लगता है। उसकी कमीज की जेब मे सेकेंड क्लास का पीला भद्दा-सा पास रखा हुआ है। उसे अचानक लगता है कि उसकी पूरी जिन्दगी इसी तरह सेकेंड क्लास के बदसूरत पास को जेब मे रखे-रखे गुजर जायेगी। और इस खयाल से उसका जी मिचलाने लगता है।

तभी बोरीवली की फास्ट गाडी प्लेटफार्म पर आती है। लोगों मे हलचल शुरू हो जाती है और वे एक दूसरे को धकेल कर आगे बढने की कोशिश करने लगते हैं। वह जानता है कि बंबई के लोग और सभी मामलो मे सभ्य हो सकते हैं लेकिन ट्रेन मे चढ़ने-उतरने के मामले मे नहीं। कई बार तो उसने देखा है कि लोग उतरने वालो को अन्दर घुसने की जल्दी मे उतरने ही नही देते और दादर उतरने वाला आदमी बम्बई सेंट्रल जाकर उतरता है। वह इस भीड़ की रेलपेल से पीछे हटता हुआ सोचता है कि घर जाने की भी क्या जल्दी है इस भीड मे पिसने के बजाय अगर वह अंधेरी की स्लो लोकल में चला जायेगा तो उसका क्या बिगड़ जायेगा।

अंधेरी की स्लो लोकल आने मे अभी पांच मिनट की देरी है समय गुजारने के लिए वह पत्र-पत्रिकाओं के स्टाल पर आकर खड़ा हो जाता है और

स्टाल पर रखी पत्रिकाओं में अपनी निगाहे गड़ाने लगता है। वह मन ही मन मे कुछ हिसाब सा लगाता है— ९० प्रतिशत पत्रिकाओं के कवर पर किसी न किसी हसीन लड़की की तस्वीर मुस्करा रही है, बाकी दस प्रतिशत में से किसी पर माडर्न पेंटिंग बनी है, किसी पर किसी फिल्मी अभिनेता अथवा किसी राजनीतिक नेता की तस्वीर है।

तभी प्लेटफार्म पर हलचल बढ जाती है। वह स्टाल से हट कर प्लेट-फार्म पर बिल्कुल आगे आकर खडा हो जाता है बम्बइया जिन्दगी के अपने चार साल के अनुभव मे वह यह बात सीख गया था कि ट्रेन के रुकने का इन्तजार कोई करे तो उसके चढ़ने की नौबत ही नही आएगी और ट्रेन आगे बढ जायेगी। अतः इलैक्ट्रिक ट्रेन के आते ही वह कूद कर एक डिब्बे मे चढ जाता है। उसे खिड़की के पास की सीट खाली दिखाई देती है और वह लोगो को धक्का देता हुआ फुर्ती से उस सीट पर जाकर बैठ जाता है। पलक झपकते ही पूरा डिब्बा लोगों से खचाखच भर जाता है, मानों वह आदमियो की नहीं वरन पशुओं को ढोने वाली मालगाड़ी हो।

गाड़ी चलती है तो उसे अजीब सी घुटन महसूस होने लगती है। उसका मन करता है कि वह सीट से उठ कर दरवाजे के फुटबोर्ड पर जाकर खडा हो जाय ताकि खुली हवा में उसे कुछ राहत मिल सके। लेकिन फिर वह सोचता है कि अगर इस तरह वह मिली-मिलायी सीट छोड देगा तो लोग उसे पागल समझेंगे। ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार से दौड़ी जा रही है और वह खिडकी के बाहर कुछ या कुछ भी नही देखने की कोशिश करने लगता है। उसे अपना दिमाक खाली-खाली सा महसूस होता है और लगता है कि वह कोई पत्थर का बुत है, जो सदियों से सेकेंड क्लास के कम्पार्टमेंट की उस सीट पर इसी तरफ पडा हुआ है।

अचानक उसे अपनी मां के खत की याद आती है। जो उसे आज सवेरे दफ्तर मे मिला है। यो वह दफ्तर में भी उस खत को कई बार पढ चुका है, फिर भी वह उसे जेब से निकाल लेता है और एक बार फिर पढ़ने लगता है उसकी मा ने लिखा है कि अब तो तुम्हारी नौकरी स्थायी हो गयी है, मकान भी मिल गया है। अब तुम इन जाड़ो में एक महीने की छुट्टी लेकर आ जाओ ताकि तुम्हारी शादी के काम को निपटा दिया जाये।" मां का खत पढ कर उसको बडी जोर की हंसी आती है मानो उसमें कोई मजाक की बात लिखी हो। खत तह करके वह उसे वापस जेब मे रख लेता है और अपनी पैंट की दायी जेब को ऊपर से ही टटोल कर दस-दस पैसे के चार सिक्के महसूस करता है।

अंधेरी स्टेशन पर उतर कर वह बाहर सड़क पर जाने के बजाय पुल पार करके चार नम्बर प्लेट-फार्म पर पहुंच जाता है और पटरियां फादकर उस

तरफ बढ जाता है जहां मालगाडी के कुछ टूटे-फूटे डिब्बे न जाने कब से खड़े हुए है। डिब्बो के दूसरी ओर पटरियो पर ही कई कुरूप और बेहाल औरतें अपने चेहरे पर पाउडर-लिपस्टिक पोते बैठी हैं। उसे अपनी ओर आता देखकर दो-तीन औरतें एक साथ उठ कर उसकी तरफ बढ आती है। उनमे से एक औरत आगे बढकर उसका हाथ पकड लेती है और उसे खीचती हुई सी पास की ही एक झोपडी मे ले जाती है। झोपड़ी मे एक तरफ एक छोटा सा दिया टिमटिमा रहा है। वह जानता है कि उसके यहा आने का कोई मतलब नही है, उसकी जेब मे कम-से-कम एक रुपया तो होना ही चाहिये था। वह उस औरत से अपना हाथ छुड़ा कर झोंपडी के बाहर आ जाता है। वह बदसूरत औरत जमीन पर थूकती हुई कहती है 'मरे फोकटिये कही के, बेकार मे ही आ जाते है परेशान करने के लिए।' उसे लगता है कि उस औरत का थूक उसके गले मे उतरता जा रहा है। एकदम से उसका दम घुटने सा लगता है और वह तेजी से बढता हुआ मुख्य सड़क पर आ जाता है।

खुली सडक पर पहुच कर वह राहत की सास लेता है। उसकी कॉलोनी की तरफ जाने वाली बस की लाइन बहुत लम्बी है। वह जानता है कि अगर बस की लाइन मे खडा हुआ तो आधा घण्टा तो नम्बर आने मे ही लग जायेगा, जबकि बीस मिनट मे वह पैदल चल कर घर पहुंच जायेगा। वह पैदल ही घर की तरफ चल देता है। रास्ते मे वह एक ठेले वाले से १५ पैसे की मूगफली खरीद लेता है। वह हिसाब लगाता है कि बस मे भी तो १५ पैसे खर्च हो ही जाते।

उसके कालोनी में पहुंचते-पहुचते चारो तरफ हलका अंधेरा फैलने लगता है। कलोनी की बत्तियां उसे झोपडी के दिये की तरह टिमटिमाती हुई महसूस होती है। आगे बढने पर वह गौर करता है कि उसकी बिल्डिंग के सामने वाली बिल्डिग के बाहर बहुत-से लोग जमा है। फायर ब्रिगेड की एक गाडी तथा कुछ सिपाही भी वहां खडे नजर आए। उत्सुकतावश वह अपने कमरे पर जाने के बजाय उस भीड की तरफ बढ जाता है। वहा पहुंच कर वह देखता है कि एक नेतानुमा आदमी लोगो को बार-बार पीछे हटा रहा है और बच्चो से कह रहा है कि 'यहां कोई तमाशा थोडे ही हो रहा है, तुम लोग अपने-अपने घर जाओ।' उस नेतानुमा आदमी को वह पहचानता है, उसकी बीवी कई बार उससे चाय की पत्तिया माग कर ले जाती है। उसका मन होता है कि वह आगे बढकर उस आदमी से कहे कि जब यहा तमाशा नही हो रहा है तो फिर तू ही यहां क्या कर रहा है। लेकिन वह ऐसा कुछ नही करता और उत्सुकतावश अपने पास खडे आदमी से पूछता है, 'क्या मामला है!' वह आदमी उसका सवाल सुनकर अजीब-सी नजरों से उसकी तरफ देखने लगता है, मानो कह रहा हो कि कॉलोनी का बच्चा-बच्चा इसके बारे में जानता है

और वह अभी तक अनजान बना हुआ है। उस आदमी से उसे पता चलता है कि इस बिल्डिंग के दूसरे माले पर जो नौजवान पति-पत्नी रहते थे उन्होंने आत्महत्या कर ली है। उनका आत्महत्या करने का ढंग भी बड़ा निराला था। पति शायद वैज्ञानिक था, उसने बाथरूम को चारों तरफ से बन्द करके एक नली द्वारा उसमें कोई जहरीली गैस भर ली और फिर वे दोनों नौजवान पति-पत्नी उस गैस चैम्बर में मर गये। उन्होंने बाथरूम के दरवाजे पर मरने से पहले एक नोटिस भी चिपका दिया था—अन्दर जहरीली गैस है, सावधानी से दरवाजा खोलें। फायर ब्रिगेड वालों ने बड़ी मुश्किल से दरवाजा तोड़ कर लाशें निकाली हैं। लाशें एकदम सड़ गयी है।

यह आदमी उत्साहपूर्वक उसे यह बताता है कि आत्महत्या करने से पूर्व वे अपने सारे कर्जे उतार गये हैं। पति-पत्नि दोनों ही काम करते थे, अपने को खत्म करने से पन्द्रह दिन पहले ही उन्होंने अपने कार्यालयों से अवकाश ले लिया था। घर का सारा सामान बेच कर इन पन्द्रह दिनों में उन्होंने खूब मौज-मस्ती की। वह उस आदमी से पूछता है—'इस आत्महत्या का पता कैसे लगा?' जवाब में उसे पता चलता है कि कई दिनों से उनके फ्लैट का दरवाजा नहीं खुला था, फिर पड़ोसियों को लाशें सड़ने की बदबू आयी तो उन्हें कुछ शक हुआ और उन्होंने पुलिस को इत्तला कर दी। मरने से पहले वे एक खत भी लिख कर छोड़ गये हैं।

ये सारी बातें सुनकर उसकी सारी उदासी एकदम न जाने कहां गायब हो जाती है और वह अपने आपको बहुत चुस्त महसूस करने लगता है वह जानता है आखिर उस खत में उन्होंने क्या लिखा है, लेकिन यह उस आदमी को नहीं मालूम था। अब वह भीड़ को चीर कर उस नेतानुमा आदमी की ओर बढ़ जाता है। और उसके करीब पहुचकर बिना कोई भूमिका बांधे सीधा सवाल उसकी तरफ उछाल देता है 'उस खत में उन लोगों ने क्या लिखा है?' नेतानुमा आदमी उसे पहचानता है। वह उसके कंधे पर हाथ रख कर उसे एक तरफ को ले जाता है, मानो वह कोई बहुत गुप्त बात बताने वाला हो। वह उसे बताता है कि उन्होंने पत्र में लिखा है कि वे लोग बढ़ती हुई महंगायी, रोज-रोज की बस तथा राशन की लाइन से तंग आ गये थे और यह कि उन्हें रहने के लिए अच्छा बंगला तथा कार चाहिए था। चूंकि ये सब चीजें उन्हें नहीं मिल सकी, इसलिए उन्होंने आत्महत्या कर ली।

उस नेतानुमा आदमी की बात सुन कर उसका सारा उत्साह एकदम से ठण्डा पड़ गया। वह चुपचाप अपने कमरे की तरफ बढ़ जाता है। कमरे का ताला खोलते हुए वह डरते-डरते सोचता है कि क्या वाहियात-सी बात के लिए आत्महत्या की है। अगर इस वजह से लोग आत्महत्या करने लगे तो फिर दुनिया में कुछ ही लोग जीवित बचेंगे।

ताला खोल कर वह अपने पलंग पर आकर बैठ जाता है और अपने बेडौल जूतों के फीते खोलने लगता है। फीते खोलता-खोलता वह तय करता है कि अगले महीने वह जरूर प्वाइंटेड शू खरीदेगा।

कुत्ते का मालिक

□ मनोज सोनकर

बम्बई की फुटपाथ गर्द-गुबार को कम, भीड को ज्यादा जन्म देती है। यह भीड कही भी पैदा हो जाती है, किसी भी वक्त पैदा हो जाती है, किसी भी कारण पैदा हो जाती है, और अक्सर बिना कारण ही पैदा हो जाती है। उस दिन भी शाम के वक्त, सिनेमाघर के पास बहुत बड़ी भीड पैदा हो गयी थी और उसके पैदा होने का इत्तफाक से कारण भी था।

एक साहब अपने शानदार कुत्ते के साथ चले जा रहे थे। कुत्ते की जंजीर साहब के हाथ मे थी। साहब कुत्ता कम संभाल रहे थे, जजीर से ज्यादा खेल रहे थे। कुत्ते का रंग एकदम काला था, बाल चमकदार थे, ऊंचाई अच्छी थी दांत चमकदार थे, जीभ लपलपा रही थी। तदुरुस्ती ऐसी थी जैसे तालीम से निकला ताजा पट्ठा! कुत्ते और साहब दोनो को साथ-साथ देखने पर, यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती थी कि मालकिन ने कुत्ते पर ज्यादा ध्यान दिया था और साहब पर कम! "कितना शानदार कुत्ता है! विदेशी है! हाथ फेरो, तो फिसल जाय! देशी कुत्तों पर तो मक्खिया भिनभिनाती रहती है, पर इसको देखो!" कुत्ते पर चन्द लोगो की निगाहे टिक रही थीं। एकाएक कुत्ता जजीर तुड़ाकर भागा था, साहब तेज झटका लगने के कारण गिरते-गिरते बचा था, फिर भी उसका चश्मा टूट गया था। हार कर, उसने अपने टूटे हुए चश्मे को अपनी चौंधियायी हुई आखो पर चढा लिया था। अपने कुत्ते को देशी कुतिया के आगे-पीछे घूमते देखकर उसे बड़ा गुस्सा आया था "व्हाट ए रबिश सेलेक्सन ?", यह मन-ही-मन भन्नाया था। राकी! राकी!! साहब के सम्बोधनो का उस पर कोई असर नही हुआ था। वह और भी जोर-शोर से कुतिया के इर्द-गिर्द घूमने लगा था। साहब से यह सहन नही हुआ था, उसने झपटकर कुत्ते की जंजीर को बड़े जोरो से पकड़ लिया था। उसके हाथ बुरी तरह से कांप रहे थे, वह कुत्ते को अपनी तरफ पूरी ताकत लगाकर खीच रहा था। यह उसकी शान और प्रतिष्ठा का सवाल था। आखिरकार

उसने कुत्ते को गले से पकड़ लिया था, पर कुत्ता भूंकता ही जा रहा था। कुतिया ने भी भूंकना शुरू कर दिया था। देखते-ही-देखते वह कुत्ते के अगल-बगल घूमने लगी थी। साहब ने चिढ़कर कुत्ते को गोद में उठा लिया था। उनमे यकायक अजीब ताकत आ गयी थी। फिर भी कुत्ते ने भूंकना बन्द नहीं किया था। एक क्षण, कुतिया ठगी-सी कुत्ते को निहारने लगी थी। थोड़ी ही देर के बाद उसने साहब के चारों ओर घूमना शुरु कर दिया था। कुतिया साहब के चारों ओर घूमती जाती थी और जोर-शोर मे भूंकती जाती थी। कभी-कभी उछलकर कुत्ते को पकड़ने की कोशिश भी करती थी। उसकी इस कोशिश से साहब को बड़ा डर लग रहा था, कही काट न ले! साहब ने एक लम्बी सास लेकर, कुत्ते को और कसकर पकड़ लिया था। उनके माथे से पसीना बह रहा था। पर, कुतिया भूंक रही थी, उछल रही थी, घूम रही थी। कुत्ता अब भी भूंक रहा था। दोनों का 'कोरस' जम रहा था। यकायक कुतिया ने थोड़ा पीछे हटकर एक लम्बी छलांग लगायी थी। अब की बार कुतिया के दांतों मे साहब की पैंट का पट्टा आ गया था। साहब ने जैसे ही पैंट संभालने की कोशिश की थी, कुत्ता उसकी गोद से उछलकर दूर जा गिरा था। कुतिया कुत्ते के चारों ओर घूम रही थी और कुत्ता कुतिया के चारों तरफ घूम रहा था और उन दोनों के चारों ओर बहुत बड़ी भीड़ घूम रही थी। "बेकार गर्दी मत करो!" हवलदार ने भीड़ को छांटने की कोशिश की थी। हवलदार चद्दर उड़ाओ चद्दर! एक फेरी वाले ने ग्राहकों को आकर्षित करने के लहजे मे आवाज लगायी थी।

साहब ईरानी होटल मे बैठा, कोका-कोला की बोतल एक तरफ रखकर "सैक्स आन द माइंड एंड फीयर इन द हार्ट" नीरद चौधरी का आर्टिकल 'वीकली' मे टूटे हुए चश्मे की सहायता से देख रहा था। कुत्ते का मालिक कौन है ? यह हवलदार की परेशानी थी।

मोहन शर्मा एक परिचित हस्ताक्षर है। एक जनवरी 1942 को उदयपुर राजस्थान में जन्म हुआ। अब तक लगभग दस पुस्तकें प्रकाशित तथा कई पुस्तकों व पत्रिकाओं के संपादन में जुड़े हुए हैं। लिखना आर्थिक रूप से इतना जरूरी नहीं जितना मानसिक सन्तुष्टि के लिए, कहा जा सकता है कि लिखने का नशा है। मार्क्सवाद से प्रभावित। रोटी के लिए वरिष्ठ प्रबन्धक, राजभाषा, बैंक आफ बड़ौदा, बम्बई का कार्यभार संभाले हुए हैं।

महानगर के कथाकार सग्रह के प्रकाशन द्वारा हमारा प्रयास है कि उन अपरचित और परिचित लेखकों को प्रकाश में लायें जो कभी-कभार ही किसी पत्र-पत्रिका में स्थान पाते हैं। इस शृंखला में यह प्रथम संग्रह बम्बई महानगर के कथाकारों को समर्पित है। इसकी अगली कड़ी के रूप में कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास के कथाकारों को स्थान दिया जायेगा। यदि आप अपनी रचनायें (कहानी, कविता या अन्य) भेजना चाहें तो आपका हार्दिक स्वागत है।

हमारा सतत प्रयास रहेगा कि इस प्रकार के प्रकाशन से नये उभरते व कम चर्चित लेखकों को शायद हम कुछ सम्मान दे पायें। जो उन्हें अवसर नहीं मिल पाता। इस योजना के विषय में आपके सुझावों का हम आदर करेंगे।

प्रकाशक